नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 112 • वर्ष 9 अंक 9
अक्टूबर 2007 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

नकली देशभक्ति और आस्था की राजनीति की धुन्ध में खो गये हैं जनता के बुनियादी मुद्दे

सम्पादक

भारत-अमेरिका परमाणु क़रार के मसले पर पूँजीपरस्तों की वतनपरस्ती का पाखण्ड अभी जारी ही था कि कांग्रेस के नेतृत्ववाली केन्द्र सरकार द्वारा रामसेतु के मसले पर अदालत में दाखिल एक हलफ़नामे नेतथाकथित आस्था की राजनीति को संजीवनी दे दी है। आने वाले लोकसभा चुनावों की पृष्ठभूमि में देश के राजनीतिक आसमान में नक़ली देशभक्ति और संकीर्ण जज़्बात की राजनीति की इतनी धूल-गर्द उड़ायी जा रही है कि उसकी धुन्ध में जनता के बुनियादी मुद्दे ओझल हो गये हैं।

सरकार समर्थक वामपन्थियों ने सबसे पहले परमाणु क़रार पर हुआँ-हुआँ शुरू कर अपने दमनकारी खूँखार चेहरे को छुपाने की कोशिश की। फिर पश्चिम बंगाल से लेकर गुजरात तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक देश को विदेशी पूँजी का खुला चरागाह बना देने की होड़ मचाने वाले सभी चुनावी रंगे सियारों ने सामूहिक रूप से हुआँ-हुआँ शुरू कर दी। नक़ली देशभक्ति के इस कानफोड़ू शोर के बीच सिंगुर और नन्दीग्राम के ग़रीब किसानों की चीखें दब गयीं, तमाम औद्योगिक क्षेत्रों में रोज़ रोज़ देशी-विदेशी पूँजी द्वारा रची जा रही बर्बरताओं की दास्तानें गुम हो गयीं, दर-ब-दर हो रही ज़िन्दगियों की पुकारें डूब गयीं और मेहनतक़शों के करोड़ों नौजवान बेटे-बेटियों के सपने खो गये।

दरअसल, पूँजीवादी राजनीति की असली कला ही यही होती है कि पूँजीपति वर्ग के वर्ग हितों के ऊपर देशहित और जनहित का मुलम्मा चढ़ाकर कितनी कामयाबी के साथ उसकी रखवाली की जाती है। अलग-अलग पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियाँ जाति, धर्म, क्षेत्र या राष्ट्रीयता से जुड़ी संकीर्ण पहचानों की चेतना से जुड़ी भावनाओं को उभाड़कर केवल अपने-अपने वोट बैंक को ही सुरक्षित नहीं करतीं। वे इसके ज़रिये मेहनतक़श वर्ग की वर्ग-चेतना को कुन्द करती हैं और इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था के दूरगामी हितों की सेवा करती हैं। अगर मेहनतक़श वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियाँ कमज़ोर हों तो पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियाँ अपने मंसूबों में अक्सर कामयाब हो जाती हैं क्योंकि मेहनतक़श वर्ग के अन्दर वर्ग चेतना स्वतःस्फूर्त ढंग से या अपने आप नहीं पैदा होती। पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियाँ गैरमुद्दों को मुद्दा बनाकर जनता के आम हितों की चेतना को इतना कुन्द कर देती हैं कि वह अपने ही लुटेरों की वन्दना करने लगती है, उनके दुख से दुखी होती है और उनकी खुशियों से खुश होती है। पूँजीवादी जनतंत्र के इस खेल की खूबी ही यही है कि जनता अपने ही लूटने वालों को चुनती है।

अगली लोकसभा के चुनाव की तारीख़ क़रीब आते जाने और मध्यावधि चुनाव की हल्की सी आहट सुनते ही देश की चुनावी राजनीति के सभी खिलाड़ी जनता को भरमाने वाले मुद्दों को गरमाने में जुट गये हैं। लोकसभा की प्रमुख विपक्षी भारतीय जनता पार्टी हताशापूर्वक अपने अनचाहे राजनीतिक वनवास से वापस लौटने की राह ढूँढ़ रही थी कि रामसेतु मसले पर केन्द्र सरकार द्वारा अदालत में दाखिल हलफ़नामे ने उसे हिन्दू हितों पर चीखपुकार मचाने का मौका दे दिया।

आस्था की राजनीति बनाम पिलपिली राजनीतिक आस्था

केन्द्र सरकार ने चेन्नई सुप्रीम कोर्ट में दायर एक याचिका पर सुनवाई के दौरान जो पहला हलफ़नामा पेश किया गया था वह भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों के निष्कर्षों पर आधारित था। इसमें कहा गया था कि इस बात के कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं कि भारत के रामेश्वरम द्वीप के दक्षिण और उत्तर-पश्चिम श्रीलंका के तलाईमन्नार के बीच पाल्क खाड़ी और मन्नार की खाड़ी को विभाजित करने वाले सेतु (इसे ही रामसेतु कहा जा रहा है) का निर्माण भगवान राम ने किया था। हलफ़नामे में यह भी कहा गया था कि राम ऐतिहासिक नहीं वरन पौराणिक चरित्र है। इस हलफ़नामे के दाखिल होते ही संघ परिवार के राजनीतिक मुखौटे भारतीय जनता पार्टी सहित उसके सभी मुख और मुखौटों ने यह कहकर हो-हल्ला शुरू कर दिया कि कांग्रेस ने हिन्दुओं की आस्था पर चोट पहुँचायी है और रामविरोधी सरकार से हिन्दू अवश्य बदला चुकायेंगे। संघ परिवार के इस हमलावर रुख के बाद केन्द्र सरकार ने दो दिन बाद ही यह हलफ़नामा वापस ले लिया और नया हलफ़नामा दाखिल करने के लिये तीन महीने की मोहलत माँगी। कार्ट में हलफ़नामा वापस लेने का कारण यह बताया गया कि ऐसा जनभावनाओं के मद्देनज़र किया जा रहा है और हलफ़नामा दाखिल होने के बाद सरकार की जानकारी में कुछ नये तथ्य आये हैं जिसकी छानबीन के लिए समय चाहिए।

हलफ़नामा वापस लिये जाने के बाद केन्द्र सरकार के दो कांग्रेसी मंत्रियों-संस्कृति मंत्री अम्बिका सोनी और जलपोत एवं सड़क परिवहन मंत्री एस.जयराम के बीच इस लापरवाही की ज़िम्मेदारी को लेकर वाक्युद्ध शुरू हो गया। यानी, कांग्रेस पार्टी ने भी यह सन्देश देने की कोशिश की कि वह भी हिन्दुओं की आस्थाओं का सम्मान करती है और उसके कुछ मंत्रियों से ग़लती हो गयी। हिन्दू भावनाओं को ठेस पहुँचाने का उसका कोई इरादा नहीं था।

विज्ञान को आस्था की लाठी से लठियाने में यक़ीन रखने वाले संघ परिवार ने हलफ़नामे पर जो बावेला खड़ा किया वह आश्चर्यजनक नहीं था। लेकिन उसके आस्थावादी हमले से कांग्रेसियों के बैकफुट पर चले जाने से उन लोगों को आश्चर्य हुआ जो उसे धर्मनिरपेक्ष पार्टी

(पेज 8 पर जारी)

राम सेतु आस्था का सेतु या राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का हेतु

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर। संघ परिवार और भारतीय जनता पार्टी सहित उसके सभी मुख और मुखौटे सेतु समुद्रम परियोजना का विरोध करते हुए रामसेतु को तोड़े जाने का विरोधकर रहे हैं। उनका प्रमुख तर्क है कि रामसेतु करोड़ों हिन्दुओं की आस्था का प्रतीक है और इसे तोड़ने का निर्णय करके केन्द्र और तमिलनाडु सरकार हिन्दुओं की भावनाओं का अपमान कर रही है। उनका कहना है कि हिन्दुओं की यह आस्था है कि इस सेतु का निर्माण भगवान राम ने अपनी वानर सेना के साथ मिलकर उस समय किया था जब वे सीताहरण करने वाल लंकापति रावण पर चढ़ाई करने जा रहे थे। इसका वर्णन वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास रचित रामचरितमानस में किया गया है। इसलिए इसे कदापि नहीं तोड़ा जाना चाहिए। संघ परिवार के सुर में सुर मिलाते हुए जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डा. सुब्रमण्यम सवामी ने सेतुसमुद्रम परियोजना पर रोक लगाने के लिए चेन्नई हाईकोर्ट में एक याचिका दायर की थी जिसे अब सुप्रीम कोर्ट में स्थानान्तरित कर दिया गया है। इसी याचिका पर सुनवाई की प्रक्रिया में केन्द्र सरकार की ओर से सुप्रीम कोर्ट ने वह हलफ़नामा दाखिल किया था जिस पर भगवाब्रिगेड द्वारा हो-हल्ला मचाने पर इसे वापस ले लिया गया।

रामसेतु का निर्माण भगवान राम ने किया था अथवा नहीं इसपर इतिहासकारों और पुरातत्वविदों की राय से पाठकों को परिचित कराने से पहले उन्हें यह जानकारी देना दिलचस्प होगा कि 1961 से ही प्रस्तावित सेतुसमुद्रम परियोजना पर अन्ततोगत्वा काम शुरू करने की स्वीकृति स्वयं अटलविहारी बाजपेयी के प्रधानतंत्रित्व वाली विगत एन.डी.ए. सरकार के कार्यकाल में दी गयी थी। इस परियोजना का पूरा नाम सेतुसमुद्रम जलपोत मार्ग परियोजना है। इसका उद्देश्य बंगाल की खाड़ी के दक्षिणी-पूर्वी हिस्से के उथले समुद्री क्षेत्र को गहरा करना और 160 किमी लम्बा 300 मीटर चौड़ा और 12 मीटर गहरा चैनल जैसा जलमार्ग तैयार करना है। जिससे जलपोतों की आवाजाही का सुगम मार्ग बन सके। विवादित रामसेतु इसी मार्ग में पड़ता है इसीलिए इसे तोड़ने की बात चल रही है। क्या यह निरा राजनीतिक पाखण्ड नहीं है कि जिस परियाजना को आगे बढ़ाने की स्वीकृति स्वयं भाजपा-नीत सरकार ने अपने कार्यकाल में दी थी आज उस पर हो-हल्ला मचाया जा रहा है।

बहरहाल, आइये देखें इतिहासकारों पुरातत्वविदों एव भूगर्भशास्त्रियों का रामसेतु निर्माण के बारे में क्या कहना है! उनका कहना है कि रामसेतु मानवनिर्मित नहीं है। यह एक भूगभिक संरचना है जो आज से लगभग एक लाख 25 हज़ार वर्ष पहले विकसित हुई है। इसके निर्माण के लिए अनेक समुद्रतटीय प्रक्रियाएं जिम्मेदार रही हैं। इनमें अतीत काल में समुद्र तटों की अवस्थितियों में होने वाले परिवर्तन, वायुजनित अनेक प्रकार की क्रियाशीलताएँ, नई भूगर्भिक हलचलें, समुद्री तरंगों की क्रियाशीलताएँ आदि प्रक्रियाएँ शामिल रही हैं। इन्हीं प्रक्रियाओं से मण्डपम, रामश्वरम और आदम पुल/रामसेतु जैसे समुद्रतटीय क्षेत्रों का विकास हुआ है। इसी प्रक्रिया में आगे चलकर समुद्रतटीय चट्टानों, मूँगे की चट्टानों (कोरल रीफ्स), समुदतटीय रेत के टीलों का विस्तार, द्वीपों की श्रृंखलाओं (रामसेतु भी) और पहले अस्तित्वमान धनुषकोडि शहर का निर्माण हुआ था। ये निष्कर्ष भारत के भूगर्भशास्त्री सर्वेक्षण (जीएसआई), व भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण (एएसआई) द्वारा लम्बे समय तक किये गये अनेक अध्ययनों पर आधारित हैं। इन अध्ययनों से यह दावा पूरी तरह खारिज होता है कि रामसेतु का निर्माण त्रेता युग में भगवान राम और उनकी वानर सेना ने किया था। संघ परिवार यह भी दावा करता है कि त्रेता युग आज से 17 लाख वर्ष

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

कलम का ठेकेदार

नोएडा की सेक्टर-57 की ए-35 की इमारत के बेसमेंट में लिंक पेन कम्पनी के पेन यानी कलम के विभिन्न हिस्सों को जोड़कर कलम तैयार होती है तथा उनकी पैकिंग भी होती है। यहाँ पर टिप-टॉप लिंक कलम, जो कि 2.50 रु. में बाज़ार में बिकता है तथा स्मार्ट जेल जो कि 5 रु. में बाज़ार में बिकता है, तैयार होता है। स्मार्ट जेल नीले, काले, हरे, लाल रंग आदि में तैयार करके भेज दिया जाता है। टिप-टॉप पेन, पहले बेरल में स्प्रिंग डालकर, फिर रिफिल डालकर, फिर भिन्न-भिन्न रंगों के टिप-टॉप बटन लगाकर तैयार किया जाता है। नीली रिफिल तथा चार भिन्न-भिन्न रंगों के टिप-टॉप बटन से युक्त ये पेन साठ की संख्या में एक जार में भरे जाते हैं। जब चालीस जार तैयार हो जाते हैं तब इन्हें बड़े गत्ते के डिब्बे में पैक किया जाता है जिसे आउटर कहते हैं।

स्मार्ट जेल कलम के अलग-अलग हिस्सों, जो बाहर-से बाक़ायदा बन कर आते हैं, जैसे – नोज़ल, बैरल, रिफ़िल, प्लग, कैप आदि को जोड़कर कलम तैयार की जाती है फिर पाउचों में छह-छह की संख्या में भरकर, साथ में एक रिफ़िल भी डाला जाता है, जो पाउच के साथ मार्केट में मुफ़्त मिलता है, इसे इनर में पैक किया जाता है। एक इनर में 120 कलम आते हैं। फिर इन इनर से एक आउटर तैयार किया जाता है। यह तो हुई कलम की बात अब करते हैं इसके ठेकेदार की बात और काम के तरीके की बात।

रमेश ठाकुर, ठेकेदार है इस कलम को तैयार व पैक करने वाली फैक्ट्री का। मज़दूरों की पगार 1800 रु. 8 घंटे की। काम के घंटे सुबह 9 से रात 9 बजे तक। तीसों दिन काम। कोई छुट्टी नहीं। करना है तो आओ वरना दूसरी जगह जाओ। वैसे औसतन 45-46 मज़दूर प्रतिदिन काम करते हैं। काम की गति बहुत ही तेज़ रहती है। इन 45-46 में 8 के क़रीब पुराने लोग है। जिनमें से कुछ को सुपरवाइज़र बना दिया है। ये सुपरवाइज़र, जिनकी पगार 2600 तक है, प्रतिदिन तेज़ गति से खुद भी काम करते हैं तथा बाकी मज़दूरों को भी तेज़ गति से काम करने के लिए गन्दी-भद्दी ज़बान में ताने मार-मार कर काम लेते हैं। वे नोज़ल लगाने से लेकर पैकिंग तक व स्प्रिंग डालने से लेकर जार बनाने व आउटर बनाने तक का सभी काम तेज़ी से करते हैं। ये ठेकेदार के विश्वासपात्र भी हैं इसलिए वह उन्हें अधिक पगार भी देता है, लेकिन दो-तीन दिन के अन्तराल पर थप्पड़ों व मुक्कों से उन्हें पीटता भी है। गन्दी-गन्दी गालियां भी निकालता है। शाम के समय जब काम बहुत ही तेज़ी में हो रहा होता है, सुपरवाइज़र चालाकी करके कुछ इनर छिपा लेते हैं। ताकि दो-तीन घंटा मौज मस्ती मारे, जो कि मज़दूरों को हासिल नहीं, और मालिक को टारगेट पूरा करके दिखा दें और शाबासी पाएं। वैसे ही जैसे एक वफ़ादार कुत्ता अपने मालिक की फेंकी हुई गेंद उठाकर लाता है और मालिक जिसे कहता है वह उस पर भौंकता भी है। बहुत कुछ वैसा ही ठेकेदार इन सुपरवाइज़रों के साथ सलूक करता है। वह उनकी पीठ थपथपाता है, उनको गुटके खिलाता है। उनको दारू भी पिलाता है लेकिन गाली-गलौच और मारपीट भी करता है। उसे प्रोडक्शन से मतलब है। डेढ़ लाख से ज़्यादा रोज़ कलम मिलनी चाहिए वरना अन्जाम भुगतने को तैयार रहो।

ठेकेदार ने छूट दे रखी है सुपरवाइज़रों को कि वे किसी भी तरह से मज़दूरों से काम लें, चाहे महिलाएं हों या पुरुष। ठेकेदार, जो कि प्रोडक्शन का या सीधे तौर पर कहें तो मुनाफ़े का पुजारी है, वह रोज़-ब-रोज़ शाम को दारू पीकर, पान चबाकर आएगा। पूछेगा कि कितना प्रोडक्शन हुआ। फिर वह गाली-गलौच और मारपीट पर उतर आयेगा। जो भी उसके सामने बोला, तो खैर नहीं। ऐसे में वह महिला मज़दूरों को भी नहीं छोड़ता। उन्हें भी गन्दे-भद्दे शब्द बोल देता है। एक महिला मज़दूर जो चार-पाँच महीने से काम कर रही है और ठेकेदार की ख़ास है, उस पर तो वह अक्सर हाथ उठा देता है।

वह अक्सर मीटिंग बुलाता रहता है, जिनमें फिल्मी अंदाज़ में बातें करता है। जैसे, "यार, तुम लोग कब सुधरोगे। मैं तुम्हें कभी कोई कमी आने देता हूँ। तुम लोग मुझे कमा कर देते हो तभी मेरी दाल-रोटी चलती है। लेकिन यार, तुम तो प्रोडक्शन के नाम पर मेरी लुटिया ही डुबो दोगे। मेरे पास कार थी, जो तुम्हारे कारण बिक गयी। आज मैं बाइक पर घूम रहा हूँ। अब से अगर मुझे प्रोडक्शन टाइम पर नहीं मिला तो एक-एक को पैसे के लिए रुला दूँगा। ये फैक्ट्री है (औरतों की ओर इशारा करते हुए) तुम्हारे पति, जेठ या बाप का दफ्तर नहीं है। कोई भी एक मिनट लेट नहीं होगा और छुट्टी नहीं मारेगा वरना चमड़ी उधेड़ दूँगा।" वह अपनी दबंगई एक और ढंग से भी दिखाता है। उसने दो पुलिस वालों से दोस्ती गाँठ रखी है जिन्हें शराब, मुर्गा खिलाता-पिलाता रहता है। और कभी-कभी फैक्ट्री में भी बुलाता है। वे घूर-घूर कर देखते हैं और चक्कर लगाकर चले जाते हैं। इससे वह बिना कहे अपना डर, अपना रोब दाब मज़दूरों के दिलों में बैठा देता है। और यह बात भी जतला देता है कि मुझसे डरो और काम करते जाओ और अगर चूँ-चपड़ करोगे तो पुलिस से मार भी खिलवा दूँगा।

इस डर, भय और काम, सिर्फ़ काम करते रहने के चलते अधिकतर छोड़कर भाग जाते हैं। उनकी जगह नये आ जाते हैं। दस-बारह दिन की तनख्वाह तो वह देता ही नहीं। और किसी की हिम्मत भी नहीं कि वह निकलवा सके। हर महीने के हिसाब में हेर-फेर साधारण बात है। कोई बोले तो उसे झा जी के पास भेज देता है कि हिसाब-किताब तो वो ही जाने मेरे पास मत आओ। पुराने काम करने वाले बताते हैं कि 8-9 साल पहले यह कम्पनी घड़ौली में थी। वहाँ पर तो बड़ा टारगेट रहता था और बहुत बुरी हालत होती थी। फिर ये कम्पनी सेक्टर-11 में शिफ्ट हो गयी। चार-पाँच साल से यह सेक्टर-57 में है।

यहां पर सुबह दो 20-20 लीटर के पानी के जार आते हैं जो दोपहर बाद ही ख़त्म हो जाते हैं। उसके बाद आप प्यास से तड़पते रहिए। जब सुपरवाइज़र चाहेगा तब ही पानी आ पाता है। और तुरन्त ख़त्म। सुपरवाइज़र अपना पानी का स्टॉक रखते हैं। वे मज़दूरों को एक बूंद पानी तक नहीं देते हैं। और तो और टॉयलेट जाओ

(पेज 3 पर जारी)

पूँजीवादी व्यवस्था के जोंकनुमा मालिक मज़दूरों की मानसिकता को इस तरह बना रहे हैं – पहले फैक्ट्री फिर घर

कोई भी फैक्ट्री या कारख़ाना ऐसा नहीं है, जहाँ हर जगह मज़दूरों को मशीन या मशीनों का कलपुर्ज़ा न समझा जाता हो। जैसे अगर किसी मशीन का कोई नटबोल्ट ढीला या ख़राब हो जाता है, तो या तो मशीन को बदल दिया जाता है या नया पुर्जा लगा दिया जाता है। वैसे ही सैक्टर-8 की एक फैक्ट्री है जहाँ रोज़-ब-रोज़ पुराने मज़दूरों को फैक्ट्री से निकाल बाहर किया जाता है और नये नौजवान मज़दूरों की भर्ती की जाती है। मज़दूरों को बाहर निकालने के लिए फैक्ट्री मैनेजर बहुत ही बारीक किस्म के तरीके ईजाद किया है। जैसे अगर कोई भी मज़दूर अपने ज़िन्दगी के दुख-सुख के बारे में या किसी भी तरह की बातचीत करते दिख गया या प्रोडक्शन में कमज़ोर हुआ या कई बार पानी पीने, बाथरूम जाते समय मैनेजर की नज़र में आ गया तो तुरन्त इस्तीफा का कागज पकड़ा दिया जाता है और जबरदस्ती उस पर दस्तख़त कराये जाते हैं। और तो और, रविवार के दिन जिसने छुट्टी मार लिया वह भी इस्तीफे से नहीं बचता है। काफी बड़ी फैक्ट्री होने की वजह से इस फैक्ट्री में ज्यादा मज़दूर काम करते हैं। हालांकि, इसमें जितने मज़दूर काम करते हैं इससे भी ज्यादा मज़दूरों की जरूरत है इसमें मगर नहीं रखा गया है। काम कर रहे कुल मज़दूरों की संख्या 650 है, मगर इसमें 1000 और मज़दूरों को रखा जा सकता है। बाहरी मालिक को दिखाने के लिए फैक्ट्री मालिक 1800 मज़दूरों की नंबरिंग रिकार्ड कराया है। फैक्ट्री के कुल 1800 मज़दूरों का काम सिर्फ़ 650 मज़दूर करते हैं। अपने खून-पसीने और हड्डियों को गलाकर।

मज़दूरों से इतना काम लिया जाता है और इतनी डाँट पड़ती है कि चिढ़ से सभी मज़दूरों ने मिलकर उस फैक्ट्री मैनेजर का नाम रावण रख दिया है। मज़दूरों के साथ रावण की तरह व्यवहार करता है। मज़दूर उसे रावण के साथ, हाई-वोल्टेज भी कहते हैं। जिस दिन शिपमेन्ट जाने वाला होता है उस दिन तो सिर पर सवार रहता ही है। कभी-कभी मज़दूरों को यह भी आदेश देता है, "अबे! लंच ब्रेक में लंच करने नहीं जाना, पहले काम पूरा करना, बाद में लंच करना।" ऐसे में अगर कोई मज़दूर, पुरुष हो या महिला, कुछ बोलता है तो तुरन्त फैक्ट्री से बाहर।

जब भी नये मज़दूरों की भर्ती होती है, तो शुरू के हिसाब के समय से ही उस मज़दूर के तनख्वाह से पी.एफ. और ई.एस. आई. काटना शुरू कर दिया जाता है। भले ही उस मज़दूर को 2 महीने या 3 महीने काम करना हो। फैक्ट्री से पी.एफ. मिलने का नियम 6 महीने का बनाया गया है। कभी भी किसी मज़दूर को अपनी पी.एफ. नहीं मिलती। ई.एस.आई. के नाम पर भी काटे गये पैसे मालिक के ही पेट में जाता है। फैक्ट्री में ही दवाइयाँ मिलती हैं। ई.एस. आई. जाने के लिए फार्म फैक्ट्री नहीं देती है। फैक्ट्री में दवाइयों की कोई ख़ास व्यवस्था नहीं है, अगर कभी-कभार मिलती भी है तो वो नकली और एक्सपायर डेट की ही दवाई मिलती हैं। वह भी बहुत कम।

फैक्ट्री मालिक लाखों लाख मज़दूरों की ज़िन्दगियों के साथ इस तरह के खिलवाड़ कर रहे हैं। और फैक्ट्रियों, कारखानों में काम कराने के दौरान इनके ऊपर मानसिक व शारीरिक दबाव बना दिये हैं कि अधिकतर मज़दूर डरकर और सहमकर ही काम करते हैं। काम से सीधे घर और घर से सीधे काम पर। सुबह 8-9 बजे से रात 8-9 बजे तक फैक्ट्री में ही गुज़ारनी पड़ती है। शाम को फैक्ट्री से छूटने के बाद हर मज़दूर की यही चिन्ता रहती है कि जल्दी से घर को भागो, घर जाने के बाद सुबह-सुबह फैक्ट्री भागने की चिन्ता और डर-भय सताने लगता है। कुछ मज़दूरों के मुँह से कभी-कभी बातचीत के दौरान पता चलता है कि रात में ही सुबह की तैयारी (खाना बनाने की) करके सोते हैं, ताकि सुबह मालिक के काम के लिए टाइम से फैक्ट्री जा सकें।

इस तरह इस पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरों के खून को पीकर पल रहे जोंक, यानी मालिक, मज़दूरों की मानसिकता इस तरह बना रहे हैं कि तुप पहले मेरे लिये काम करो, बाद में समय बचे तो फिर अपने लिए करो।

ऐसे में हम बहुसंख्यक मेहनतक़श मज़दूरों को सोचना-समझना और साहस के साथ आगे आना होगा कि आखिर इन पूँजीवादी जोंकों से कहीं ज्यादा कीमती और मूल्यवान हमारी ज़िन्दगी है। हमारे ही दम पर चमचमा रही इस दुनिया पर हम लोगों का अधिकार होना चाहिए। लेकिन इस अधिकार को हासिल करने के लिए हमें एकजुटता बनानी होगी। केवल तभी हम सम्मान के साथ जीवन जी सकते हैं। और यह तभी सम्भव होगा जब सारी अलग-अलग मुट्ठियां एक होंगी।

समीक्षा, नोएडा

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतक़श आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक **बिगुल**

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ

दिल्ली सम्पर्क : मिथिलेश, 247, बैकडोर इण्ट्री, परमानन्द कालोनी, दिल्ली-110009

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति–रु. 5.00 वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वायम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना स्टाल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतक़श साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा –लेनिन 5/-

मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-

ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सजी रोसोवस्की 3/-

अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ 10/-

समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-

क्यों माओवाद? 10/-

मई दिवस का इतिहास 5/-

अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-

पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

पार्टी कार्य के बारे में 15/-

जनता के बीच पार्टी का काम 30/-

बिगुल बिक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

हार पर हार सहता लुधियाना का मज़दूर आन्दोलन और बढ़ती निराशा

संशोधनवादियों, आर्थिकतावादियों, समझौतापरस्तों, दलालों से पीछा छुड़ाकर सही क्रान्तिकारी राह पकड़नी होगी!

लुधियाना देश के मुख्य औद्योगिक शहरों में गिना जाता है। यहाँ मज़दूरों से करवाई जाती है हाड़-तोड़ मेहनत और बदले में मिलता है इतना कम कि बुनियादी जरूरतें भी पूरी न हो सकें। पिछले कुछ वर्षों में अपनी ज़िन्दगी में कुछ सुधार की आशा के साथ इस शहर की कई बड़ी फैक्टरियों में हड़तालें हुईं। लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में इन हड़तालों के दौरान मज़दूरों द्वारा दिखाया गया जुझारूपन एक खास स्थान रखता है। लेकिन हार पर हार का सिलसिला बना रहा। हौसले पस्त होते गए। इसे सिलसिले की कड़ी बनकर रह गई बजाज सन्ज ग्रुप की पाँच फैक्टरियों में 20 अगस्त से शुरू हुई हड़ताल।

इस हड़ताल का संक्षेप वर्णन हम जरूर करेंगे लेकिन लिखीं जा रहीं इन पंक्तियों का मुख्य मकसद है हड़तालों की हार पर हार के इस सिलसिले और नीचे गिरते जा रहे मज़दूरों के उत्साह के कारणों को सामने लाना।

बजाज सन्ज की इन फैक्टरियों में पहले बारह घण्टे की शिफ्ट चलती थी। मज़दूरों को आठ घण्टे का वेतन इतना कम दिया जाता था कि उनकी मजबूरी थी कि वो ओवर टाइम लगाएँ ही। एक दिन फैक्टरी मैनेजमैण्ट द्वारा नोटिस लगा दिया गया कि आर्डरों की कमी के कारण अब शिफ्ट आठ घण्टे ही चलेगी। मज़दूरों ने इसका विरोध करते हुए ओवरटाइम लगवाए जाने के लिए जोर डाला (इसमें दो राय नहीं कि ये माँग बुनियादी तौर पर गलत है, मज़दूर विरोधी है, माँग आठ घण्टे की ही तनख्वाह बढ़ाने की रखी जानी चाहिए थी)। मैनेजमेण्ट ने मज़दूरों को भरोसा दिलाया कि आर्डर बढ़ने के साथ ही ओवरटाइम तुरन्त शुरू कर दिया जाएगा। 16 अगस्त को दस घण्टे शिफ्ट का नोटिस लगा। लेकिन मज़दूर बारह घण्टे की शिफ्ट चाहते थे, वो अपनी माँग पर डटे रहे। फैक्टरी प्रबन्धन ने सख्त रुख अख्तियार करते हुए 100 मज़दूरों को निकाल दिया जिनमें मज़दूर नेता और उत्साही नौजवान मज़दूर शामिल थे। इस कार्रवाई के विरोध में बजाज सन्ज की पाँचों फैक्टरियों के सभी लगभग 3000 मज़दूरों ने काम बन्द कर दिया। गेट जाम कर दिए गए। पूरा दिन और रात फैक्टरियाँ बन्द रहीं।

मालिकों को झुकाने के लिए यहाँ तक तो सब ठीक ही था (चाहे माँग जो भी रही हो!) लेकिन संशोधनवाद के सारे रिकार्ड तोड़ चुकी सी.पी.आई. (एम) से सम्बन्धित ट्रेड यूनियन "सीटू" की बातों में मज़दूर उलझ गए। फैक्टरी गेटों को जाम करके बैठे हड़ताली मज़दूरों से सीटू नेताओं ने कहा कि वो न तो धरना करें और न ही नारेबाजी, चुपचाप अपने कमरों में चले जाए। उन्होंने कहा कि वो खुद ही मालिकों से बात कर लेंगे और मसला सुलझा लेंगे। मज़दूरों के पास और विकल्प भी क्या था! दुर्भाग्यवश किसी क्रान्तिकारी संगठन के अनुपस्थिति के चलते मज़दूरों को उनकी बात माननी ही पड़ी। बस यहीं पर आन्दोलन ठप हो गया। 70 मज़दूर अब भी बाहर हैं। बाकी के सारे हड़ताल समाप्त कर काम पर लौट चुके हैं। सीटू द्वारा कोर्ट में केस लगाकर वही तारीक पर तारीक का रास्ता उन्हें बता दिया गया है। संशोधनवादी चक्का एक और आन्दोलन को पैदा होते ही कुचल गया है।

यह कोई पहला आन्दोलन नहीं है जो सीटू की अगवाई में फ्लॉप हुआ हो। हीरो साइकिल के बाद हाईवे, राकमैन, रालसन, के.डब्ल्यू. आदि कई फैक्टरियों में हड़तालें हुईं। मज़दूरों का उत्साह और गुस्सा ऊँचाई पर होता था लेकिन सीटू की अगवाई में धरने फैक्टरी गेट से कहीं दूर ही लगाए जाते रहे! बाहर से मज़दूरों को लाकर मालिक अपना काम निकालते रहे। यह आशा भी की जाती थी कि अन्य संगठनों और फैक्टरियों के मज़दूरों से एकता बनाकर मज़दूरों के संगठित संघर्ष के जरिए मालिकों और उनके पिट्ठू प्रशासन पर दबाव बढ़ाया जाना चाहिए लेकिन सीटू द्वारा हर बार धारा 144 का बहाना बनाया जाता रहा, मज़दूरों को डराया जाता रहा।

इटक (कांग्रेस से सम्बन्धित ट्रेड यूनियन), शिव सैनिकों से सम्बन्धित ट्रेड यूनियनें, यहाँ-वहाँ से लेबर कोर्ट के केस लड़ने की "ट्रेनिंग" पा चुके व्यक्तिगत तौर पर मज़दूर दफ्तर खोलकर बैठे मज़दूर "नेता" ही नहीं बल्कि खुद को कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बताने वाले कुछ संगठन भी हैं जो अदालती कार्रवाई से बढ़कर कोई व्यवहारिक कदम उठाने की हिम्मत तक नहीं करते। कई-कई सालों तक चलने वाले के जरिए इन सबके पास "चन्दा" तो इक्कट्ठा होता ही है साथ में यहाँ-वहाँ कुछ रस्मी एकता दिखाने के लिए "समर्थन" में मिल जाते हैं।

वैश्वीकरण-उदारीकरण के इस दौर में पहली बात तो यह है कि मुख्यत फैक्टरी आधारित आन्दोलन के जरिए क्रान्तिकारी आन्दोलन आगे बढ़ ही नहीं सकता। ठेकाकरण, असेम्बली लाइन का बिखरा देने जैसे कारकों के चलते इलाकाई स्तर पर मेहनतक़शों को संगठित करके ही मज़दूर आन्दोलन आगे बढ़ सकता है। चाहे कोई छोटी से छोटी माँग भी हो, भले ही किसी मामूली से लगने वाले सुधार के लिए संघर्ष हो, आज के मज़दूर आन्दोलन की यही जरूरत है। इस बात को अगर अभी कुछ देर एक तरफ रखकर भी बात करें तो हम देखते हैं कि इन आर्थिकतावादी फैक्टरी गेट आधारित आन्दोलनों का रूप हद से भी ज्यादा भद्दा था। आज ट्रेड यूनियन आन्दोलन पर समझौता प्रस्त और दलाल काबिज हैं। पहले की तरह ट्रेड यूनियन नेतृत्व अब केवल अर्थवादी और सुधारवादी ही नहीं रहा बल्कि हालात इससे भी कहीं ज्यादा बिगड़ चुकी है। ट्रेड यूनियन नेतृत्व मुख्यतः अब पूँजीपतियों के खुले दलालों का रूप ले चुका है। बिल्कुल यही हालत लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन की है।

मुद्दा सिर्फ़ हारों का नहीं है बल्कि यह भी है कि लड़ाइयाँ बिना लड़े ही हारी गईं, लड़ाई को बिना लड़े ही हार का रूप दे दिया गया। मज़दूर हर ताकत से भिड़ने को तैयार थे, हर परेशानी को झेलने के लिए तैयार थे लेकिन नेतृत्व था कि समझौतों के लिए उड़क-बैठक करता रहता था। यहाँ तो जुझारू आर्थिकतावाद भी दिखाई न पड़ा। नेतृत्व का अवसरवाद, समझौतापरस्ती, दलाली, पराजय की मानसिकता, कायरता जैसे कारक ही मुख्य रूप से लुधियाना की इन सभी फैक्टरियों की हड़तालों के फ्लॉप सिद्ध होने और मज़दूरों में बढ़ती चली गई निराशा के कारण हैं।

इन हालातों से निकलने के लिए अभी समय लगेगा। क्रान्तिकारी धारा को बहुत ही कड़ी मेहनत से स्थिति को सम्भालना होगा। ईमानदार, निडर, जुझारू, दृढ़, जनवादी आदि गुणों से लैस नेतृत्व तो चाहिए ही चाहिए लेकिन इतने से ही सफलता हासिल नहीं हो जाएगी। ठोस परिस्थितियों का ठोस मुल्यांकन करते हुए संघर्ष की सही रणनीति अख्तियार करके ही आगे कदम बढ़ाए जा सकते हैं, पूरे देश की तरह ही लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन में बरकरार ठहराव, बिखराव, मज़दूरों की पस्तहिम्मती को तोड़ा जा सकता है।

आर्थिकतावादी राह चाहे कोई भी शक्ल अख्तियार कर ले—जनता में अवश्य ही निराशा पैदा करता है क्योंकि यह जनता को यह नहीं समझा पाता कि उनकी सभी समस्याओं की जड़ मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में हैं, इसे उखाड़ फेंककर ही इनसे निजात पाई जा सकती है। ये जनता को दुवन्नी-चवन्नी की लड़ाइयों में उलझाए रखता है, सुधारों से आगे का क्रान्ति का रास्ता उसे कभी दिखा ही नहीं पाता भले ही नेतृत्व कितना भी ईमानदार और साहसी क्यों न हो! जनता के रोजमर्रे के आर्थिक संघर्षों (ये चाहे कितने भी आरम्भिक स्तर पर क्यों न हों) सर्वहारा जनता को उसके

(पेज 9 पर जारी)

जनता की एकजुटता की मिसाल, खेड़ा में सड़क निर्माण की शुरुआत

खोड़ा, गाजियाबाद। खोड़ा नोएडा से सटा घनी आबादी वाला मज़दूर बहुल इलाका है। एक अनुमान के मुताबिक यहाँ की आबादी 7 लाख के आसपास है। यह इलाका अपने भीतर करीब 80 कालोनियों को समेटे हुये है। यह एक ओर दिल्ली तो दूसरी ओर नोएडा के साथ बार्डर बनाता है। इस तरह दिल्ली, नोएडा और साहिबाबाद से घिरा यह इलाका इन तीनों औद्योगिक इलाकों को मज़दूर सप्लाई करता है।

यहाँ लाखों की संख्या में मज़दूर-मेहनतक़श किराये के मकानों में रहते हैं। कुछ ने अपने गुजर-बसर लायक कमरे भी बनवा लिए हैं। यह इलाका आज से करीब 25 साल पहले बसना शुरु हो गया था। जैसा कि पूँजीवादी विकास में हमेशा से होता आया है, इस इलाके की ओर गाजियाबाद, नोएडा को हाइटेक सिटी बनाने वालों का ध्यान ही नहीं गया। नतीजा यह रहा कि किसान अपनी जमीन बेचते गये और निम्न मध्य वर्ग और मज़दूर के लोग यहाँ आकर बसते चले गये। न सड़कों की योजना बनी, न गन्दे पानी की निकासी की। न यहाँ पीने के पानी की सप्लाई की ओर ही कोई ध्यान दिया गया, ना ही बिजली की वितरण व्यवस्था की ओर।

इस तरह पिछले 25 साल से यह कॉलोनी किसी अनाथ बच्चे की तरह अपने-आप पलती रही और बढ़ती रही। चुनाव-चुनाव का गन्दा खेल-खेलने वाले राजनीतिक पार्टियाँ लोगों को घटिया दर्जे की दलबन्दी (भाषा, क्षेत्र, इलाका आदि) में बाँटती चली गई। जब कभी लोगों ने अपनी पहल-कदमी पर आवाज उठाने की कोशिशें कीं, तब-तब इन दलबंदियों ने उन्हें संगठिन होने से ही रोक दिया।

नौजवान भारत सभा ने लोगों में पस्तहिम्मती की आम भावना को महसूस किया। घर-घर अभियान चलाया जिससे पता चला कि लोग सड़क-नाली निर्माण तो चाहते हैं पर सोचते हैं कि कोई साथ नहीं देगा। नेताओं पर उन्हें कोई भरोसा नहीं रहा गया है। उन्होंने बताया कि इलाके के प्रधान के पास जाने पर टका सा जवाब मिला—"तुम लोग उसी से गलियाँ बनवाओ जिसे तुमने वोट दिया था।"

इन हालात को समझाते हुये नौजवान भारत सभा ने एक पर्चा निकाला—"विकास का रथ तो दौड़ा, पर खोड़ा को क्यों छोड़ा"। गली-गली में मीटिंगे व सभाएँ की गईं। एक माँग पत्र लिखकर तैयार किया गया व घर-घर जाकर हस्ताक्षर करवाये गये। इसमें 320 घरों के लोगों ने अपने हस्ताक्षर किये। सिलसिला करीब 23 दिन चला। 8 सितम्बर 2007 को रात 8 बजे आम सभा बुलाई गई। इस सभा में करीब 150 लोगों ने हिस्सा लिया। सभा में उपस्थिति लोग यह देखकर चकित थे कि इतने लोग कैसे इकट्ठा हो गये। उन्हें स्वयं इस बात पर विश्वास करना कठिन लग रहा था। सभा में अपनी बात रखते हुये नन्दलाल ने बताया कि सरकारें आम लोगों की जेबों से किस तरह हजारों-करोड़ों रुपये टैक्स के नाम पर वसूल लेती है। किस तरह रोजमर्रे की जरूरत की चीजें खरीदने पर हमारी मेहनत की गाढ़ी कमाई सरकारी खजानों को भरती है और यह पैसा अफसरी ताम-झाम में स्वाहा कर दिया जाता है। हमारी बस्तियों को विकास-विहीन व लावारिस छोड़ दिया जाता है। खोड़ा की आबादी 7 लाख है पर वहाँ न कोई सरकारी स्कूल है, न अस्पताल, न डाकखाना।

नौजवान भारत सभा के गौरव ने इस आन्दोलन के लिए जुटे सहयोग का आय-व्यय ब्योरा आम सभा में रखा। सभा में तय किया गया कि रविवार सुबह 8 बजे सभी लोग जुलूस की शक्ल में ग्राम प्रधान के घर जाकर अपना माँग पत्र देंगे। माँग पत्र की 8 प्रतिलिपियाँ शासन-प्रशासन के अलग-अलग स्तर पर भेजी गईं।

रविवार 9 सितम्बर को करीब 100 लोगों का हुजूम ग्राम प्रधान के घर पर गया। प्रधान पहले से ही आक्रामक मुद्रा में थे। उन्होंने जुलूस का नेतृत्व कर रहे नौजवान भारत सभा कार्यकर्ता से कहा—"इन्हें डी.एम. के पास लेकर जा, यहाँ क्यों आया है।" लेकिन जन दबाव को देखते हुये उन्हें बात सुननी पड़ी और यह दबाव यहाँ तक बढ़ा कि उन्होंने तत्काल दो सड़कों के निर्माण का वायदा कर डाला। कुछ ही दिन के बाद सड़क का निर्माण कार्य भी शुरु हो गया।

यह खोड़ा निवासियों की एक बड़ी जीत थी। इसके तुरन्त बाद नौजवान भारत सभा ने फिर एक पर्चा निकाला जिसमें बताया गया कि जनता की एकता बड़े से बड़ा काम कर सकती है, सड़क-नाली की माँग तो छोटी-बात है। इस पर्चे में लिखा गया था कि सड़क और नाली जीवन की बुनियादी सुविधाएँ हैं, यह निर्माण जनता के पैसे से ही किया जाता है। यदि कोई सरकार या जन प्रतिनिधि इस काम को करता है तो वह आम जन पर अहसान नहीं करता।

खोड़ा के मात्रिका विहार और इंदिरा गार्डन के लोग अपनी जीत से स्वयं आश्चर्य चकित हैं। लेकिन उन्हें यह महसूस होने लगा कि दलगत चुनावी राजनीति का विकल्प सम्भव है।

कलम का ठेकेदार

(पेज 3 से आगे)

तो जल्दी आ जाओ। दो-तीन मिनट हुए नहीं कि सुपरवाइज़र वापस आने पर चिल्लाने और गाली देने शुरू कर देता है।

ऐसा नोएडा की तमाम फैक्ट्रियों में होता है। किसी में कम तो किसी में ज्यादा। उदाहरण के लिए बी-10, सेक्टर-58 को भी लिया जा सकता है। वहाँ बेशक पैसा ज़्यादा था लेकिन ज़िल्लत में सभी से बढ़कर। मारपीट, माँ-बहन की गाली रोज़ाना का काम था। एक जिल्लत से भरी पशु के समान थी वहाँ कारीगरों की ज़िन्दगी।

तब मैं एक ही सवाल पूछता हूँ—सबसे कठिन मेहनत कौन करता है? कौन नाइट लगाता है? जवाब होगा—हमीं सब, मेहनतक़श-मज़दूर। मालिक कहाँ से तिजोरी भरता है? हमीं लोगों की मेहनत की कमाई से। तब फिर हम सब जानवर की तरह मार खाते, गाली सहते हुए, कम पैसे में ज़िन्दगी गुज़ारते हुए, गन्दी बस्तियों और सड़ाँध में एक-एक रोज बिताते हुए क्यों जी रहे हैं। हमें भी जीने का अधिकार है। और यह अधिकार पूँजीपति और सरकार दबा कर बैठी है, जिसे हमें छीनना होगा—अगर हमारी आत्मा अभी मरी नहीं है, अगर हम सच्चे इन्सान हैं।

एक मज़दूर, नोएडा

शहीदेआज़म भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष

(28 सितम्बर 2007-28 सितम्बर 2008)

की शुरुआत पर क्रान्तिकारी स्पिरिट ताज़ा करने का आह्वान

शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मशताब्दी वर्ष की शुरुआत के अवसर पर जहाँ एक ओर सरकारी कर्मकाण्डों और अन्य आनुष्ठानिक आयोजनों के ज़रिये उनकी विरासत को कलंकित करने की कोशिश की गयी वहीं देश के अलग-अलग हिस्सों में सक्रिय क्रान्तिकारी जनसंगठनों ने इस ऐतिहासिक अवसर पर क्रान्तिकारी स्पिरिट को नये सिरे से ताज़ा करने का आह्वान किया और उनके सपनों को पूरा करने वाली पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नई जनक्रान्ति के लिए छात्रों-नौजवानों और मेहनतक़श अवाम की गोलबन्दी तेज़ करने का संकल्प लिया।

दिल्ली

शहीदेआज़म भगतसिंह के सौवें जन्मदिवस के अवसर पर दिल्ली में विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रम

28 सितम्बर, दिल्ली। शहीदेआज़म भगतसिंह के सौवें जन्मदिवस के अवसर पर दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा में दिल्ली में अलग-अलग स्थानों पर कार्यक्रम आयोजित किये। जन्मशताब्दी की पूर्वसन्ध्या पर **नौजवान भारत सभा** ने करावलनगर की शहीद

भगतसिंह कॉलोनी में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। कार्यक्रम शाम को 6 बजे शुरू हुआ। सबसे पहले शहीदों को श्रद्धांजलि देते हुए नौभास के कार्यकर्ताओं ने एक गीत 'शहीदों के लिए' प्रस्तुत किया। इसके बाद गगनभेदी नारेबाज़ी के बाद कार्यक्रम की औपचारिक शुरुआत की गयी। सबसे पहले नौभास के कार्यकर्ता आशु ने अपनी बात रखते हुए कहा कि आज के समय में हमारे सामने जो सबसे अहम काम है वह यह है कि विस्मृति के अँधेरे में धकेल दिये गये भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जनता के सामने लाया जाय। शासक वर्ग ने आज़ादी के बाद से ही एक साज़िश के तहत भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को दबाया है, छिपाया है और जनता के सामने नहीं आने दिया है। मिसाल के तौर पर, वह तथ्य जानकारी होने के बावजूद किसी भी सरकार ने जनता के सामने नहीं लाया कि भगतसिंह ने जेल में रहने के दौरान चार किताबें और एक जेल नोटबुक लिखी थी। भगतसिंह की जेल नोटबुक एक रूसी अनुसंधानकर्ता के प्रयासों के कारण सामने आयी और राहुल फाउण्डेशन ने उसे हिन्दी में प्रकाशित किया और हिन्दी भाषी पाठकों के सामने भगतसिंह की शख्सियत के कई छिपे पहलुओं को उजागर किया। लेकिन इसके अतिरिक्त भी, चार पुस्तकें थीं जो आखिरी सूचना के अनुसार नेहरू को सौंपी गयी थीं। लेकिन उसके बाद उनका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। आशु ने पूछा कि आख़िर कहाँ गयीं वे किताबें? ऐसा किसी कांग्रेसी नेता या बुद्धिजीवी के साथ तो नहीं हुआ! गाँधी और नेहरू ने क्या कहा था यह तो सभी पाठ्यपुस्तकों और स्कूली से लेकर कॉलेज तक के पाठ्यक्रमों तक में पढ़ाया जाता है, लेकिन भगतसिंह कितने मेधावी, प्रतिभाशाली और क्रान्तिकारी चिन्तक थे, यह किसी भी पुस्तक में नहीं बताया जाता। उल्टे महाराष्ट्र और उड़ीसा जैसे राज्य के पाठ्यक्रमों में उन्हें आतंकवादी बताया जाता है। कैसी विडम्बना है यह? आशु ने कहा कि स्पष्ट तौर पर यह एक साज़िश के तहत किया जा रहा है। कारण यह है कि भगतसिंह के विचारों से आज भी शासक और लुटेरे भय खाते हैं और हर वक्त इस प्रयास में रहते हैं उनके विचार जनता तक न पहुँच पाएँ। इसके बाद 'किस्सा-ए-आज़ादी, उर्फ़ साठ साल की बर्बादी' नामक नाटक की प्रस्तुति की गयी। इस नाटक में आज़ादी के बाद बीते 60 वर्षों की कहानी को जनता के सामने पेश किया गया। नाटक में दिखलाया गया कि किस प्रकार आज़ादी मिलने के बाद कांग्रेस अपने वायदों से मुकर गयी और किस तरह शुरू से ही पूँजीपतियों की सेवा में लग गयी। इसके बाद तमाम और भी सरकारें आयीं लेकिन उनके राज में भी जनता को कांग्रेस के राज की ही तरह दमन, उत्पीड़न और शोषण मिला। साथ ही, इस पूरे दौरान जनता के प्रतिरोध को भी चित्रित किया गया। इसके बाद दो और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गयी, 'आँधी के झूले पर झूलो' और 'तोड़ो बन्धन तोड़ो'। नौजवान भारत सभा के संयोजक आशीष ने कहा कि, आज के समय में संवेदनशील, बहादुर क्रान्तिकारी युवाओं के समक्ष जो सबसे बड़ा कार्यभार है वह है भगतसिंह के विचारों को जन-जन तक पहुँचाना। भगतसिंह ने स्वयं कहा था कि आज हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम-पिस्तौल उठाएँ। हम उनसे कहेंगे कि वे पढ़ें और पॉलिटिक्स का ज्ञान हासिल करें। और क्रान्ति की अलख को गाँव की जर्जर झोपड़ियों, खेतों-खलिहानों से लेकर फैक्टरियों-कारखानों तक पहुँचाएँ। आशीष ने कहा कि यही आज का काम है। आज भगतसिंह के विचारों को गाँव के ग़रीबों के बीच और शहरों में लहरा रहे मज़दूरों के जनसमुद्र के बीच बिखेर देना होगा। यहीं से एक अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण का रास्ता फूटेगा, जिसका सपना भगतसिंह ने देखा था। अन्त में नौभास के अभिनव ने अपनी बात रखते हुए कहा कि आज भगतसिंह के विचार पहले से भी ज़्यादा प्रासंगिक हो चुके हैं। भगतसिंह ने कहा था कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि समाज में पूँजीपति मेहनतक़श जनता की आय के साधनों पर कब्ज़ा जमाए बैठे रहेंगे। ऐसे शोषकों की चमड़ी का रंग कोई भी हो, उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक इंसान द्वारा इंसान का शोषण जारी रहेगा। अभिनव ने कहा कि बताने की आवश्यकता नहीं है कि आज भी इंसानों द्वारा इंसानों का शोषण जारी है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल यही है कि आज भारत में 84 करोड़ लोग 20 रुपये प्रतिदिन से कम की आय पर जी रहे हैं। 28 करोड़ बेरोज़गार सड़कों पर चप्पलें फटका रहे हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों में मज़दूरों का गुलामों की तरह शोषण किया जा रहा है। ग़रीब किसान पूँजी और बाज़ार की मार से लगातार उजड़ रहे हैं। खेतिहर मज़दूरों का शोषण और भी भयंकर है। देश में 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे भूख और कुपोषण का शिकार हैं। दूसरी तरफ़, आजादी के छह दशक बीत जाने के बाद शीर्ष के 22 पूँजीपति घरानों की सम्पत्तियों में 500 गुना से भी अधिक की बढ़ोत्तरी हो चुकी है। ऐसे में साफ़ है कि यह किसकी आज़ादी है। सरकार इन्हीं पूँजीपतियों के हितों की नुमाइन्दगी करती है। अभिनव ने कहा कि यही प्रमाण है कि भगतसिंह की लड़ाई की प्रासंगिकता तो अब और भी बढ़ गयी है और अब तो और ज़्यादा शिद्दत के साथ इस बात की ज़रूरत महसूस हो रही है कि एक अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण में जुट जाया जाय जो चुनाव के रास्ते नहीं बल्कि इंक़लाब के रास्ते देश में जनता के स्वराज्य को क़ायम करे। इसके बाद कार्यक्रम का समापन हुआ। कार्यक्रम स्थल पर ही भगतसिंह के विचारों वाली पुस्तकों की एक प्रदर्शनी भी लगी हुई थी। जनता ने बड़ी संख्या में इस कार्यक्रम में शिरक़त की और नौभास के प्रयास को सराहा। कई नौजवानों ने नौभास से जुड़ने और भगतसिंह के विचारों को जानने की इच्छा भी प्रकट की।

(पेज 5 पर जारी)

(पेज 4 से आगे)

दिशा छात्र संगठन

28 सितम्बर को दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली विश्वविद्यालय के नॉर्थ कैम्पस में एक साइकिल यात्रा का आयोजन किया। इस साइकिल यात्रा का नाम 'शहीदेआज़म विचार यात्रा' था। यह साइकिल यात्रा हिन्दू कॉलेज से प्रारम्भ हुई। इस यात्रा में करीब 70 छात्र-छात्राओं ने शिरक़त की। हिन्दू कॉलेज से निकलने के बाद यात्रा दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, किरोड़ीमल कॉलेज, हंसराज कॉलेज, दौलतराम कॉलेज, श्रीराम कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स, खालसा कॉलेज, मिराण्डा हाउस, स्कूल ऑफ़ करेस्पॉण्डेंस, साइंस फैकल्टी, लॉ फैकल्टी होते हुए आर्ट्स फैकल्टी पहुँची जहाँ इसका समापन हुआ। विचार यात्रा के दौरान इसमें शामिल छात्र-छात्राएँ 'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चुनो', 'भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा, छात्र और नौजवान उसे करेंगे पूरा', 'भगतसिंह का ख़्वाब अधूरा, इसी सदी में होगा पूरा', 'भगतसिंह ने दी आवाज़, बदलो-बदलो देश-समाज', 'भगतसिंह का आह्वान, जागो-जागो नौजवान' आदि नारे लगा रहे थे। इस दौरान यात्रा टोली ने हर कॉलेज और फैकल्टी के गेट पर रुककर पर्चा वितरण किया और नुक्कड़ सभाएँ कीं। यात्रा टोली जहाँ-जहाँ गयी वहाँ छात्रों ने इसे सराहा और दिशा छात्र संगठन से जुड़ने की इच्छा जतायी। दिशा छात्र संगठन की शिवानी ने बताया कि इस यात्रा का मकसद भगतसिंह को किसी रस्म-अदायगी के तौर पर याद करना नहीं है। आज स्थिति यह है कि पढ़ी-लिखी आबादी का भी बड़ा हिस्सा नहीं जानता है कि भगतसिंह महज एक बहादुर क्रान्तिकारी नहीं थे बल्कि एक क्रान्तिकारी चिन्तक भी थे। उनकी लड़ाई सिर्फ़ अंग्रेज़ी शोषण के ख़िलाफ़ नहीं थी बल्कि हर किस्म के शोषण के ख़िलाफ़ थी। आज सबसे बड़ा काम है कि भगतसिंह के चिन्तन के पहलू को आम छात्रों-नौजवानों के सामने लाया जाय और उनके विचारों से आम जनता को परिचित कराया जाय। दिशा छात्र संगठन के संयोजक अभिनव ने कहा कि दिशा छात्र संगठन का मानना है कि भगतसिंह के विचार आज भी प्रासंगिक हैं और आम छात्र-युवा आबादी में उसके व्यापक और सघन प्रचार की आवश्यकता है। आज कैम्पसों का वर्ग चरित्र बदलता जा रहा है और आम घरों के लड़के-लड़कियाँ कैम्पस तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। कारण यह है कि सरकार तेज़ी से फीसें बढ़ा रही है और सीटें घटा रही है। ऐसे में महज छात्र आन्दोलन सम्भव नहीं रह गया है और आवश्यकता है एक व्यापक छात्र-युवा आन्दोलन की। यानी, व्यापक पैमाने पर ऐसे युवाओं को आन्दोलन से जोड़ना होगा जो कॉलेज-विश्वविद्यालयों तक नहीं पहुँच पा रहे हैं, जो प्राइवेट नौकरियाँ कर रहे हैं, फैक्टरियों में खट रहे हैं या बेरोज़गार घूम रहे हैं। ऐसे नौजवानों में क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ असीमित हैं और क्रान्तिकारी छात्रों को इन नौजवानों से जुड़ना होगा और उनके सामने एक विकल्प रखना होगा। शिक्षा और रोज़गार को बुनियादी अधिकार बनाने के लिए संघर्ष करते हुए एक देशव्यापी छात्र-युवा आन्दोलन संगठित करना आज का एक प्रमुख कार्यभार है। किसी भी क्रान्तिकारी पार्टी के एजेण्डे पर यह प्रश्न प्रमुखता के साथ मौजूद होगा। इसके बिना किसी अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण सम्भव नहीं है। साइकिल यात्रा का समापन एक जनसभा के साथ हुआ जिसमें मिथिलेश, प्रसेन, श्वेता, लता आदि अन्य कई छात्र कार्यकर्ताओं ने अपनी बात रखी और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की।

गाजियाबाद

गाजियाबाद। शहीदेआज़म भगतसिंह की जन्मशती वर्ष के अवसर पर नोएडा-गाजियाबाद की नौजवान भारत सभा ने 23 से 30 सितम्बर 2007 तक इलाके के विभिन्न मुहल्लों में कार्यक्रमों की श्रृंखला आयोजित की। 23 सितम्बर को प्रातः 5:30 से विजयनगर के एल ब्लॉक में प्रभात फेरी से कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। एल-ब्लॉक के निवासी इतनी सुबह धूम-धूमकर गीत गाते हुये नौजवानों की टोली को कौतूहल से देख रहे थे। नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता सभी नागरिकों को पर्चा भी देते जा रहे थे। प्रभात फेरियों का सिलसिला विजयनगर के अलग-अलग मुहल्लों में कई दिन चला। 25 व 26 सितम्बर की सुबह यह टोली पुराना व नया गाजियाबाद रेलवे स्टेशन पर मौजूद थी। वहाँ एक ओर "स्मृति संकल्प यात्रा" का बैनर टंगा था। शहीद भगतसिंह के उद्धरण एक पोस्टर पर लिखकर एक दीवार पर चिपका दिये गये थे। सुबह 7 बजे से 10 बजे तक टोली के दो कार्यकर्ता डफ पर गीत गाते हुये लोगों का ध्यान अपने विचारों की ओर खींच रहे थे। कई नौजवान कार्यकर्ता आने-जाने वालों को पर्चे थमा रहे थे। इन पर्चों में आम जन को शहीद भगतसिंह की मूल विचारधारा से परिचित कराने वाली बातें लिखी थीं। एक नौजवान कार्यकर्ता चादर फैला कर आने-जाने वाले लोगों से पर्चों के लिए आर्थिक सहयोग की माँग कर रहा था। इन दो दिनों के दौरान 2500 से ज्यादा लोगों ने पर्चे लिये और कई लोगों ने आर्थिक सहयोग भी दिया।

शाम के वक्त इस टोली के सदस्य साइकिल पर सवार हो कर मुहल्लों, चौराहों, गलियों में जाकर डफ बजा कर लोगों को इकट्ठा करते, भाषण देते और पर्चे बाँटते। 8 दिनों के सतत अभियान के दौरान करीब नौ हज़ार पर्चे-बंटे गये। इन सभाओं में नौजवान और मज़दूर आबादी ने सबसे अधिक हिस्सेदारी की।

28 सितम्बर के दिन विजयनगर के प्रताप विहार में स्थित शहीद भगतसिंह पुस्तकालय के पास ही लोग जुलूस के लिए एकत्रित होने लगे थे। करीब 25 नौजवान जुलूस की शक्ल में गौशाला फाटक होते हुये गाजियाबाद घण्टाघर स्थित शहीदेआजम की प्रतिमा पर पहुँचे। इस टोली के सभी सदस्य हाथों में दफ्तियाँ लिए थे। इन पर 'भगतसिंह का ख्वाब, इलेक्शन नहीं इंकलाब', 'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चलो' आदि नारे लिखे थे। सारे रास्ते जुलूस नारे लगाते चल रहा था।

भगतसिंह की प्रतिमा पर पहुँचकर टोली ने नारों से माहौल को गरमा दिया। टोली के जनार्दन ने शहीद भगतसिंह की मूर्ति का माल्यार्पण किया और कपिल ने अपनी बात रखी। उन्होंने बताया कि मानवद्रोही हो चुकी पूँजीवादी व्यवस्था का एक ही विकल्प है– इसका समूल नाश और समाजवाद का निर्माण। इसके लिए देश के सभी सच्चे युवा आगे आयेंगे और आम जन से अपने जीवन को जोड़ेंगे। उन्होंने कहा कि देश का बौद्धिक तबका ए.सी. रूम में बैठकर शहीद भगतसिंह को याद कर रहा है लेकिन भगतसिंह तो मज़दूरों किसानों की आम मेहनतक़श अवाम की बात करते थे। इसलिए उनकी जन्मशती मनाने का सही तरीका उनके सपनों के भारत का निर्माण करने के संकल्प के अलावा, शोषण विहीन समाज बनाने के लिए आगे आने के अलावा कुछ और हो ही नहीं सकता।

इस मौके पर नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता हड़ताल पर बैठे गाजियाबाद के सफाई कर्मचारियों के बीच गये। सफाई कर्मचारी दुकानदारों द्वारा अपने दो सहकर्मियों पर हुये जानलेवा हमले के विरोध में हड़ताल पर थे। वहाँ सभा के कार्यकताओं ने पर्चे बाँटे और दलाल नेताओं के खिलाफ कर्मचारियों को सावधान करते हुये क्रान्ति की राह पकड़ने का आह्वान किया।

29 व 30 सितम्बर को खोड़ा के मात्रिका विहार व नोएडा की सेक्टर 9 व 10 की झुग्गी में मशाल जुलूस, नाटक व क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गई। इन कार्यक्रमों में सैकड़ों लोगों ने हिस्सेदारी की। हजारों लोगों ने पर्चे पढ़े। आम लोग 'भगतसिंह का ख्वाब, इलेक्शन नहीं इंकलाब' का नारा लगा रहे थे। लोगों ने 'देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच' नाटक को खूब सराहा।

आम लोगों ने वक्ताओं के भाषण को ध्यान से सुना। उन्होंने पूछा कि यह सही है कि पूँजीवाद एक बीमारी है लेकिन इसका रास्ता क्या होगा? इसपर कार्यकर्ताओं और आम मज़दूरों के बीच लम्बी बात हुई। कई मज़दूरों ने अपनी पहलकदमी दिखाई और कामों में आने की इच्छा जाहिर की। नौजवान भारत सभा ने साल भर बस्ती मुहल्लों में भगतसिंह जन्मशती वर्ष को मनाने का संकल्प लिया।

लुधियाना

भगतसिंह जन्मशताब्दी कनवैनशन पूरे जोश से सम्पन्न

पंजाब के कोने-कोने से पहुँचे सैकड़ों नौजवनों के "शहीद भगतसिंह अमर रहे!" "इंकलाब ज़िन्दाबाद", "शहीदो तुहाडे काज अधूरे, लाके ज़िन्दगियाँ करांगे पूरे" आदि नारों के साथ लुधियाना के जवाहर नगर कैम्प के हनुमान झंझघर में नौजवान भारत सभा की तरफ से बुलाई गई "शहीद भगतसिंह जन्मशताब्दी कन्वैनशन" सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस कनवैनशन के साथ ही नौभास द्वारा चलाई जा रही **स्मृति संकल्प यात्रा** की पंजाब में दूसरे चरण की शुरुआत हो गई। शहीद भगतसिंह के 75वें शहादत दिवस से ही जारी इस अभियान को दूसरे दौर, जोकि जन्मशताब्दी के अन्त 28 सितम्बर 2008 तक जारी रहेगा, में शहीद भगतसिंह के विचारों को आम जनता तक पहुँचाने के लिए और भी जोश-ओ-खरोश के साथ आगे बढ़ाने का प्रण किया गया।

"वो एक अमीर घर से थे, पढ़े-लिखे और बुद्धिमान थे। भगतसिंह चाहते तो अंग्रेजों के प्रशासन में किसी भी बड़े पद को हासिल कर ऐश-आराम की ज़िन्दगी जीने की सोच सकते थे। लेकिन उन्होंने ये घटिया रास्ता न चुनकर भारतीय जनता की गुलामी ग़रीबी के विरुद्ध, उसके सुन्दर भविष्य के लिए सब धन-दौलत को ठोकर मारकर क्रान्तिकारी जीवन जीने का रास्ता चुना। हम नौजवानों को उनसे प्रेरणा लेनी होगी," इन शब्दों के साथ नौभास पंजाब के संयोजक राजविन्दर ने नौजवानों को शहीद भगतसिंह के सपनों के भारत का निर्माण के लिए अपना जी-जान लगा देने का आह्वान किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय से विशेष रूप से जन्मशताब्दी कनवैनशन में पहुँचे दिशा छात्र संगठन के अभियान टोली ने कहा कि आज क्रान्तिकारी भावनाएँ रखने वाले नौजवनों को ग़रीब मेहनतक़श जनता में धँस जाना होगा। भगतसिंह के आह्वान पर अमल करते हुए, गाँव-शहर ही झोपड़पट्टियों में रहने वाले लोगों, तमाम सर्वहाराओं में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना होगा और उनके जुझारू क्रान्तिकारी जन संगठन बनाने होंगे। जनता के बीच में से अग्रणी चेतन हिस्सों से क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी का निर्माण करना होगा, जो पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्ति की अगवाई दे सके। साथ ही उन्होंने नौजवानों को जाति-धर्म-क्षेत्र आदि के नाम पर जनता को बाँटकर रखने वाले फासीवादियों से खबरदार रहने और आर.एस.एस. जैसे इन फासीवादियों द्वारा जो आज शहीद भगतसिंह और अन्य क्रान्तिकारियों के जीवन और विचारों को तोड़-मरोड़कर प्रचार किया जा रहा है, उसका पूरी ताकत के साथ पर्दाफाश करने का आह्वान किया।

पंजाब क्रान्तिकारी पत्रिका "प्रतिबद्ध" के सम्पादक सुखविन्दर ने कहा कि नौजवानों को सही दिशा में आगे बढ़ने के लिए अध्ययन करना होगा। भगतसिंह भी ऐसा ही किए थे। गम्भीर और गहन अध्ययन के बाद ही उन्होंने समाजवादी विचारों को अपनाया था। वे केवल जुझारू क्रान्तिकारी ही नहीं बल्कि गम्भीर चिन्तक और दार्शनिक भी थे। उन्होंने अपने अनुभव, भूतपूर्व भारतीय क्रान्तिकारियों

(पेज 6 पर जारी)

(पेज 5 से आगे)

से ही नहीं बल्कि विश्वभर के मेहनतक़शों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों से भी प्रेरणा और शिक्षा हासिल की। उन्होंने शहीद भगतसिंह के वैचारिक विकास को जानने और उनकी अन्तिम समय तक विकसित हो चुकी विचारधारा को समझने और आगे बढ़ाने के लिए नौजवनों को प्रेरित किया।

अनिल, जोगिन्दर, राजविन्दर, नरिन्दर ने "आँधी के झूले पर झूलो" आदि समूह गीत पेश किए। लखविन्दर बख्शीवाला ने "मैनु हर गभरू विंचो दिखदी है तसवीर भगतसिंह दी" और राजविन्दर ने "मशाला बाल के चलना" आदि पंजाबी क्रान्तिकारी गीत पेश किए। नौजवानों ने जोरदार तालियों के साथ उनके गीतों की सराहना की।

कनवैनशन के दौरान स्टेज की कार्यवाई सम्भाल रहे अजयपाल ने चार प्रस्ताव पेश किए। पहले में भगतसिंह द्वारा जेल जीवन के दौरान लिखी गई चार किताबें "आत्मकथा", "समाजवाद का आदर्श", "भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन" और "मौत के दरवाजे पर" जिसकी आशंका है कि वे गुम हो चुकी हैं, को ढूँढ़ने के लिए राष्ट्रीय कमिशन बनाने के लिए सरकार के आगे माँग रखी गई। दूसरे प्रस्ताव में माँग की गई कि भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेजों को भारत की सभी भाषाओं में छापकर हर गाँव और शहर की शिक्षा संस्थाओं, पुस्तकालयों में रखा जाए, तीसरे प्रस्ताव में भगतसिंह के लेखों को हर स्तर के पाठ्यक्रम में शामिल करने की माँग की गयी। अगले प्रस्ताव में माँग की गई कि भगतसिंह का वह पिस्तौल जो सांडरस कत्ल में भी इस्तेमाल किया गया था को किसी राष्ट्रीय संग्रहालय में रखा जाए। उल्लेखनीय है कि इस ऐतिहासिक पिस्तौल को "आज़ाद" भारत के हुक्मरानों ने भी कई दशकों तक फिलौर (जिला लुधियाना) जेल में अपराधियों से मिले हथियारों के बीच ही रखा हुआ था।

सभी नौजवानों में सर्वसम्मति से ये चारों प्रस्ताव पारित किए।

इसके बाद नौजवानों का ये हुजूम कनवैनशन स्थल से लुधियाना

की सड़कों पर पैदल मार्च के लिए निकल पड़ा। सारे राह आसमान चीरते नारे गूँजते रहे। लोगों में पर्चा बाँटा गया। हाथों में भगतसिंह की तस्वीरों और विचारों के बड़े-बड़े बैनर लिए दो लाइनों में चलते हुए नौजवानों का ये काफिला भरत नगर चौंक से होता हुआ जगरांव पुल तक पहुँचा। वहीं से जवाहर नगर कैम्प पहुँचन के साथ ही कनवैनशन का समापन हुआ।

इस जन्मशताब्दी कनवैनशन में पहुँचने के लिए बड़े पैमाने पर कालेजों, विश्वविद्यालयों, मज़दूर बस्तियों और ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दी और पंजाबी में पर्चा वितरण किया गया। शहीद भगतसिंह की तस्वीर वाला एक आकर्षक पोस्टर भी दीवारों पर चिपकाया गया। दीवार-लेखन भी की गई। लुधियाना के गयासपुरा इलाके में झण्डा मार्च करते हुए पर्चा बाँटा गया था।

गोरखपुर

भगतसिंह सप्ताह का आयोजन

यहाँ दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा द्वारा संयुक्त रूप से स्मृति संकल्प यात्रा के अन्तर्गत भगत सिंह सप्ताह का आयोजन किया गया। सप्ताह की शुरुआत भगतसिंह जन्मशताब्दी मार्च से हुई। यह मार्च गोरखपुर विश्वविद्यालय के मुख्य प्रवेश द्वार से शुरू होकर बिस्मिल तिराहा, गोलघर, टाउनहाल, बख्शीपुर, घासीकटरा होते हुए जाफ़राबाजार-कल्याणपुर स्थित 'आह्वान' कार्यालय पर समाप्त हुआ। मार्च के दौरान रास्ते भर जगह-जगह कई नुक्कड़ सभाएँ की गई और व्यापक पर्चा वितरण किया गया। कार्यकर्ता विभिन्न नारे लिखी आकर्षक तख्तियाँ हाथ में लिए चल रहे थे। मार्च में कार्यकर्ता चार पहिये वाले हाथ ठेले पर भगतसिंह की विशाल आदमकद तस्वीर के साथ चलती-फिरती पोस्टर प्रदर्शनी भी साथ लेकर चल रहे थे।

'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चलो', 'भगतसिंह ने दी आवाज़, बदलो-बदलो देश-समाज', 'भगतसिंह का है पैगाम, जागो मेहनतक़श अवाम', 'भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा,

मेहनतक़श और नौजवान उसे करेंगे पूरा' आदि ओजपूर्ण नारों और नुक्कड़ सभाओं के ज़रिये व्यापक जनसमुदाय को भगतसिंह के अधूरे सपनों की याद दिलायी गयी और उन्हें पूरा करने के लिए क्रान्तिकारी जनसंघर्ष संगठित करने का आह्वान किया गया।

सप्ताह के अन्य कार्यक्रमों में गोरखपुर विश्वविद्यालय के मुख्य प्रवेश द्वार पर छात्रों की भारी भीड़ के समक्ष देश-विदेश के चुनिन्दा कवियों की क्रान्तिकारी कविताओं की ओजपूर्ण और भावनापूर्ण प्रस्तुतियाँ और कई स्थानों पर 'दिशा' टीम द्वारा सामूहिक रूप से तैयार किये गये 'किस्सा-ए-आज़ादी उर्फ साठ साल की बर्बादी' नामक नुक्कड़ नाटक का मंचन शामिल थे।

इस नुक्कड़ नाटक में भगतसिंह के सपनों के आइने में साठ साल की आज़ादी के असली चरित्र को उजागर करते हुए नये भारत के निर्माण के लिए भगतसिंह के रास्ते पर चलने का आह्वान किया गया है। तथाकथित आज़ादी मिलने के बाद आम मेहनतक़श अवाम की उम्मीदें, उसका मोहभंग, पूँजीवादी सत्ता का दमनकारी चरित्र, पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों की पतनशीलता, संसदीय वामपन्थ की नपुंसकता आदि को विभिन्न दृश्यावलियों में समेटा गया है। कोलाज शैली में लिखे गये इस नाटक की विभिन्न दृश्यावलियों को दो सूत्रधार आपस में जोड़ते हैं।

इसके अलावा, 28 सितम्बर के दिन शहर के बेतियाहाता चौक पर स्थित भगतसिंह की प्रतिमा के समक्ष कुर्बानी, विद्रोह और क्रान्ति के प्रतीक लाल रंग के सौ गुब्बारों को हवा में उड़ाया गया। इसके बाद संकल्प सभा हुई और जन्मशताब्दी वर्ष में भगतसिंह के सपनों को पूरा करने के लिए नया संकल्प लेने के प्रतीक स्वरूप मशाल जुलूस भी निकाला गया।

कार्यक्रमों में प्रमुख रूप से प्रमोद, अवधेश, उदयभान, प्रशान्त, राजू, वीरेश, समर, दीपक, वीरेन्द्र, शिल्पी, अपूर्व, मनीष, रोहितशव, अतुल, सन्त, धीरज, नागेन्द्र आदि ने शिरकत की। इस अवसर पर शहर में व्यापक पैमाने पर पोस्टर और स्टीकर चिपकाये गये।

इलाहाबाद

दो दिवसीय कार्यक्रम

इलाहाबाद शहर में 'दिशा छात्र संगठन' के कार्यकर्ताओं ने भगतसिंह जन्मशताब्दी की शुरुआत के अवसर पर दो दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया। जन्मशताब्दी की पूर्वसंध्या पर संगठन के कार्यकर्ताओं ने विश्वविद्यालय परिसर में जुलूस निकालकर भगतसिंह के अधूरे सपनों की याद दिलाया। जुलूस के दौरान कार्यकर्ता भगतसिंह के चित्र छपे टी-शर्ट पहने हुए थे और आकर्षक तख्तियाँ हाथों में लेकर चल रहे थे जिनपर भगतसिंह के सन्देश और आह्वानपरक नारे लिखे हुए थे। जुलूस की समाप्ति पर छात्रसंघ भवन के समक्ष 'देश को आगे बढ़ाओ' नामक नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति भी की गयी।

28 सितम्बर को शहर के आम नागरिकों के बीच व्यापक स्तर पर भगतसिंह की क्रान्तिकारी विरासत की याददिहानी के लिए साइकिल जुलूस निकाला गया। जुलूस विश्वविद्यालय परिसर स्थित छात्रसंघ भवन से शुरू होकर समूचे विश्वविद्यालय क्षेत्र से गुजरता हुआ चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत स्थली आज़ाद पार्क से होते हुए सिविल लाइंस, सुभाष चौक से गुजरकर हाईकोर्ट परिसर पहुँचकर समाप्त हुआ।

साइकिल जुलूस के रास्ते में जगह जगह रुककर नुक्कड़ सभाएँ भी की गयीं और पर्चा वितरण किया गया। कार्यकर्ताओं के जोशीले नारों और युवा सुलभ आवेग ने समूचे शहर को यह अहसास दिलाया कि शहीदों की याद को ठण्डे कर्मकाण्डी अनुष्ठानों में तब्दील करने वाले लोग क्रान्तिकारी विरासत को गन्दा कर रहे हैं। कार्यक्रम में प्रमुख रूप से नमिता, गीतिका, अमित, अनूप, अभिषेक, रितेश, प्रदीप और देवेन्द्र आदि ने शिरकत की।

लखनऊ

लखनऊ, 28 सितम्बर। 'मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली, ये मुश्ते खाक़ है फ़ानी, रहे रहे न रहे।' ये लाइने भगतसिंह द्वारा अपने छोटे भाई कुलतारसिंह को लिखे गए अन्तिम पत्र से ली गई हैं और इसे आधार बनाया है 'नौजवान भारत सभा' व 'दिशा छात्र संगठन' की ओर से तैयार किये गये पोस्टर प्रदर्शनी में।

उक्त दोनों संगठनों की ओर से आज भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष (28 सितम्बर 2007-28 सितम्बर 2008) के अवसर पर हजरतगंज में भगतसिंह के विचारों की एक झाँकी प्रस्तुत की गई। जिसका उद्देश्य जनता को भगतसिंह के विचारों से परिचित कराना है। हिन्दुस्तान की जनता की मुक्ति के लिए जो भगतसिंह के विचारों को पोस्टर में दर्शाया गया है। जैसे—'यदि कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित करती है तो उस देश के नौजवानों का अधिकार ही नहीं कर्तव्य बन जाता है कि वे ऐसी सरकार का उखाड़ फेंके।' 'क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है,' आदि।

नौजवान भारत सभा के लालचन्द व शालिनी ने बताया कि भगतसिंह की वीरता और कुर्बानी से तो पूरा देश परिचित है। लेकिन इस देश के पढ़े-लिखे नौजवान तक यह नहीं जानते कि 23 वर्ष की छोटी-सी उम्र में फाँसी का फन्दा चूमने वाला यह जाँबाज नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! उन्होंने कहा कि यह हमारी जनता का दुर्भाग्य है और सत्ताधारियों की साजिश का नतीजा है। अब यह हमारा काम है हम भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाएँ, उनकी स्मृति से प्रेरणा लें और उनके विचारों के आलोक में अपने देशकाल की परिस्थितियों को समझकर नई क्रान्ति की दिशा तय करें और फिर ताउम्र क्रान्ति की राह पर हमदृढ़ता पूर्वक आगे बढ़े।

भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की तस्वीरों से सजी इस पोस्तर प्रदर्शनी में फाँसी के फन्दे पर चढ़ते क्रान्तिकारी, टूटती हथकड़ियाँ, जेल सीखचों व लहराती मुट्ठियाँ उन महान क्रान्तिकारियों के जीवन की जीवन्त तस्वीर उपस्थित कर रहे थे। इस प्रदर्शनी को कलाकार, कार्टूनिस्ट रामबाबू के निर्देशन में कला महाविद्यालय के छात्रों ज्ञानेन्द्र और सुनील द्वारा तैयार किया था। पोस्टर प्रदर्शनी को देखनेक के लिए लगातार लोगों की भीड़ बनी रही, जो भगतसिंह के उद्धरणों को पढ़ रहे थे और उस पर बातें कर रहे थे, एक विचारोत्तेजना का माहौल था लोगों में। आयोजकों से लगातार कुछ लोग बहस भी कर रहे थे।

इस अवसर पर भगतसिंह के साहित्य का एक पुस्तक प्रदर्शनी के साथ-साथ क्रान्तिकारी गीतों के 'उजाले के दरीचे' नाम के कैसेट भी था और साथ में भगतसिंह की फोटो व उद्धरण के टीशर्ट भी थे। टीशर्ट के पहनने के उद्देश्य के बारे में आयोजकों ने बताया कि आज युवाओं तक यह सन्देश पहुँचाना है कि वे माइकल जैक्शन व मैडोना की जगह भगतसिंह को अपना हीरो माने क्योंकि आज के युवाओं के सच्चे हीरो भगतसिंह ही हो सकते हैं।

सुधारवाद और क्रान्तिवाद

स्तालिन

क्रान्तिकारी कार्यनीति और सुधारवादी कार्यनीति में क्या अन्तर है?

कुछ लोग समझते हैं कि लेनिनवाद सुधारों, समझौतों और सन्धियों के एकदम विरुद्ध है। यह धारणा बिल्कुल गलत है। और लोगों की तरह बोल्शेविक भी यह बात जानते हैं कि एक खास अर्थ में हर छोटी चीज़ सहायक होती है, और कुछ विशेष परिस्थितियों में आम तौर पर सुधारों की और खास तौर पर सन्धियों और समझौतों की आवश्यकता एवं उपयोगिता होती है।

लेनिन ने कहा है, "अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवाद के उन्मूलन का युद्ध विभिन्न राज्यों के बीच होने वाले साधारण युद्धों से सौगुना अधिक कठिन, लम्बा और पेचीदा है। ऐसे युद्ध का संचालन करते समय पहले से अपनी रणनीति न निर्धारित करना, दुश्मनों के परस्पर विरोधी स्वार्थों से संघर्षों का (चाहे वे अस्थाई ही क्यों न हों) लाभ न उठाना, जो मित्र बन सकते हैं (चाहे वे अस्थाई, अस्थिर और आगा-पीछा करने वाले ही क्यों न हों, और कुछ खास शर्तों पर ही मित्रता के लिए तैयार क्यों न हुए हों) उनके साथ मित्रता करने के लिए अपनी माँगों को थोड़ा कम करने और उनके साथ समझौता करने से इंकार करना क्या बिल्कुल हास्यास्पद नहीं है? क्या लगभग वैसा ही नहीं है जैसा कि किसी दुरूह और अनजान पहाड़ की चोटी की कठिन चढ़ाई आरम्भ करने के पहले ही इस बात की घोषणा कर देना कि हमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते से नहीं जाना होगा, कभी पीछे कदम रखने की आवश्यकता न पड़ेगी और न पूर्व निश्चित मार्ग को छोड़कर किसी अन्य रास्ते के आजमाने की ही जरूरत होगी।" (लेनिन "वामपन्थी" कम्युनिज्म : एक बचकाना मर्ज, ग्रन्थावली, खण्ड 10 पृ. 111)

अतएव प्रश्न सुधारों, समझौतों और सन्धियों का नहीं है। प्रश्न उनके उपयोग का है।

एक सुधारवादी के लिए सुधार ही सबकुछ है; क्रान्तिकारी कार्य तो आकस्मिक चीज़ है; अधिक से अधिक वह गप-शप करके समय काट देने या जनता की आँखों में धूल झोंकने का एक साधन हैं। यही कारण है कि पूँजीवादी शासनकाल में सुधारवादी कार्यनीति के अन्तर्गत सुधार केवल उस शासन को दृढ़ करने और क्रान्ति को विघटित करने के अस्त्र बन जाते हैं।

इसके विपरीत एक क्रान्तिकारी के लिए मुख्य चीज़ सुधार नहीं है बल्कि क्रान्तिकारी कार्य है। सुधार उसके लिए क्रान्ति के उपपरिणाम है। यही कारण है कि पूँजीवादी शासनकाल में क्रान्तिकारी कार्यनीति के अन्तर्गत छोटे-मोटे सुधार भी उक्त शासन को विघटित करने और क्रान्ति को दृढ़ करने के अस्त्र बन जाते हैं और क्रान्ति आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सहायता देते हैं।

अतएव एक क्रान्तिकारी किसी सुधार को इसलिए स्वीकार करता है कि वह उसकी सहायता से क़ानूनी और गैरक़ानूनी कामों को एक साथ चला सकता है और सुधारों की आड़ में पूँजीवादियों को उखाड़ फेंकने के लिए जनता की क्रान्तिकारी तैयारियों को आगे बढ़ाने का अपना गैरक़ानूनी काम और भी मुस्तैदी से चला सकता है।

साम्राज्यवादी शासन की परिस्थितियों के अन्तर्गत क्रान्तिकारी ढंग से समझौतों और सुधारों के उपयोग करने का *यही* वास्तविक अर्थ है।

इसके विपरीत एक सुधारवादी सुधारों को इसलिए स्वीकार करता है कि उसके बहाने वह सभी गैरकानूनी कामों को तिलांजलि देता है, जनता की क्रान्तिकारी तैयारियों के मार्ग में रोड़े अटकाता है और सुधारों के 'वरदान' की छाँह में बैठकर विश्राम करता है।

यह है सुधारवादी कार्यनीति का तात्पर्य।

साम्राज्यवाद के युग में सुधारों और समझौतों के सम्बन्ध में यही लेनिनवाद का दृष्टिकोण है।

अमेरिकी समाज में अमीर-ग़रीब के बीच बढ़ती खाई और मज़दूर वर्ग की स्थिति

दुनिया भर का और हमारे देश का भी मीडिया अमेरिका को एक मध्यवर्ग की सेवा करने वाली अर्थव्यवस्था और असंख्य सम्भावनाओं के देश के रूप में पेश करता है। तमाम टी.वी. कार्यक्रमों को देखकर ऐसा लगता है मानो अमेरिका स्वर्ग हो! तस्वीर आँखों के सामने कुछ ऐसी बनती है जैसे कि अमेरिका में कोई ग़रीब नहीं होता, कोई बदहाली नहीं होती, वगैरह। अमेरिकी जनतन्त्र को दुनिया का सबसे बड़ा जनतन्त्र कहा जाता है और अमेरिका खुद भी दुनिया भर में जनतन्त्र का दरोगा बने फिरता है। लेकिन मीडिया उन आँकड़ों और सच्चाइयों को कभी नहीं बताता जो इस अमेरिकी स्वप्न की असलियत पर से परदा हटा देते हैं। हाल ही में कुछ नये आँकड़े सामने आये हैं जो हमारे सामने कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को खड़ा करते हैं।

स्वयं सरकारी आँकड़े बताते हैं कि पिछले कुछ दशकों में अमेरिकी मज़दूर वर्ग की सापेक्षिक स्थिति में काफ़ी गिरावट आयी है। यानी अन्य धनी वर्गों की तुलना में उसकी आय में कमी आयी है और उसमें ग़रीबी बढ़ी है। इस बात को लेकर स्वयं मज़दूर वर्ग में जागरूकता बढ़ी है कि आर्थिक विकास के फल सिर्फ़ धनी वर्ग तक पहुँच रहे हैं और लाभ के "रिस कर नीचे तक जाने" (ट्रिकल डाउन थियरी) के सिद्धान्त में कोई दम नहीं है। दिसम्बर, 2005 में नेशनल ब्यूरो ऑफ़ इकोनॉमिक रिसर्च ने बताया कि 1980 से 2004 के बीच प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में दो तिहाई की बढ़ोत्तरी हुई। लेकिन मुद्रास्फीति से होने वाली कमी को घटाने के बाद औसत मज़दूर की मज़दूरी में की आयी। 1972 से 2001 के बीच सबसे ऊपर के 10 प्रतिशत धनी लोगों की आय में मात्र 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। लेकिन सबसे ऊपर के 0.1 प्रतिशत लोगों की आय में इसी दौरान 181 प्रतिशत की वृद्धि हुई। और तो और, इसी दौरान सबसे ऊपर के 0.01 प्रतिशत लोगों की आय में 497 प्रतिशत की वृद्धि हुई। तमाम अर्थशास्त्री इसकी वजह यह बताते हैं कि बढ़ती उत्पादकता और मज़दूरी के बीच का सम्बन्ध टूट गया है। कहने का मतलब यह है कि अगर प्रति मज़दूर उत्पादकता में वृद्धि होती है तो उसकी कमाई भी बढ़नी चाहिए। लेकिन होता उल्टा है मज़दूर जितना अधिक उत्पादक होता जाता है वह उतना ही ग़रीब होता जाता है। कारण यह है बढ़ी हुई उत्पादकता का लाभ मज़दूर की जेब में न आकर मालिक की जेब में जाता है। उपरोक्त रिपोर्ट के ही अनुसार 1997 से 2001 के बीच वास्तविक आय बढ़ोत्तरी में विभिन्न वर्गों का हिस्सा इस प्रकार था—ऊपर के 10 प्रतिशत को कुल आय वृद्धि का 49 प्रतिशत प्राप्त हुआ; नीचे के 50 प्रतिशत को कुल आय वृद्धि का मात्र 13 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त हुआ। 1970 से 1998 के बीच सर्वाधिक धनी 0.1 प्रतिशत अमेरिकियों की आय मेहनतक़श वर्ग की कीमत पर चौगुनी हो गयी!

इन सारे आँकड़ों का अर्थ सिर्फ़ यह नहीं है कि अमेरिकी मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ना रुक गया है। इसका अर्थ यह भी है कि अमेरिकी मज़दूरों की आर्थिक और सामाजिक असुरक्षा लगातार बढ़ रही है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था में मैन्यूफैक्चरिंग उत्पादन तो बढ़ रहा है लेकिन मैन्यूफैक्चरिंग क्षेत्र में रोज़गार लगातार घट रहा है। कारण है मज़दूरों की बढ़ती उत्पादकता। 2001 से 2006 के बीच में मज़दूरों की प्रति घण्टा उत्पादकता में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मतलब यह कि अब पहले से कम मज़दूरों में ही पहले से अधिक उत्पादन हो सकता था। दूसरी ओर मैन्यूफैक्चरिंग उत्पादन पहले जैसी रफ़्तार से नहीं बढ़ रहा है। इसका कारण यह है कि माँग बढ़ना बन्द हो गयी है। इसलिए अधिक उत्पादन की आवश्यकता नहीं है और पहले जितना उत्पादन मज़दूरों की उत्पादकता बढ़ने के कारण पहले से कम मज़दूरों में ही किया जा सकता है। नतीजा यह है कि बड़ी अमेरिकी कम्पनियों में लगातार छँटनी हो रही है। इसमें सबसे ज़्यादा नुकसान पहले से ग़रीब लोगों का हो रहा है जो दसवीं से भी कम पढ़े होते हैं। 1980 के दशक में दसवीं से कम पढ़े मज़दूरों की वास्तविक आय में 20 प्रतिशत की गिरावट आयी। 1979 से 1992 के बीच इस हिस्से की वास्तविक आय में 23 प्रतिशत की गिरावट आयी। यहाँ तक कि जो दसवीं तक पढ़े हैं उनकी आय में भी इस बीच 17 प्रतिशत की गिरावट आयी। इस बीच अनौपचारिक क्षेत्र लगातार बढ़ा है और स्थायी रोज़गार की जगह अस्थायी और ठेका रोज़गार ने ली है।

रोज़गार सुरक्षा के घटने का आलम क्या है इसका अन्दाज़ा कुछ आँकड़ों से लगाया जा सकता है। एक अध्ययन के अनुसार 1983 में 45 से 54 वर्ष की आयु वाले लोगों के पास अगले 12.8 वर्षों तक के लिए नौकरी होती थी। लेकिन 2004 में यह आँकड़ा मात्र 9.7 वर्ष रह गया। 1980 के दशक में 40 से 50 वर्ष उम्र के बीच के अमेरिकियों का 13 प्रतिशत ग़रीबी में रहता था। 1990 के दशक में इस आबादी का 36 प्रतिशत हिस्सा ग़रीबी में रहता था।

धनी और ग़रीब के बीच की खाई भी लगातार बढ़ती गयी है। 1980 से 2004 के बीच ऊपर के 1 प्रतिशत अमेरिकी धनिकों की आय दोगुनी हो गयी। यह वर्ग कुल कर योग्य संसाधनों के 50 प्रतिशत से भी अधिक का मालिक है। बुश ने हाल ही में करों में जो कमी है उसका लाभ ऊपर के सिर्फ़ 32 प्रतिशत परिवारों को हुआ है।

इस बढ़ती खाई और रोज़गार असुरक्षा के निहितार्थ सिर्फ़ आर्थिक नहीं है। यानी, इससे होने वाले नुकसान को सिर्फ़ रुपये-पैसे के अर्थों में नहीं समझा जा सकता। अमेरिकी मेडिकल संस्थानों ने अपनी रिपोर्टों में लगातार बताया है कि रोज़गार के असुरक्षित होने के कारण मेहनत करने वाली अमेरिकी जनता में मानसिक विकार तेज़ी से बढ़े हैं। अवसादग्रस्तता, व्यक्तित्व का विघटन, पागल होना, विक्षिप्त होना, आत्महत्या कर लेना—ऐसी घटनाएँ अमेरिकी मज़दूर वर्ग में आम होती जा रही हैं। दूसरी तरफ़, एक बहुत बड़ा हिस्सा तेज़ी से लॉटरी, कैसीनो और सट्टेबाज़ी की ओर खिसका है। तुरत-फुरत अमीर हो जाने और अपनी बदहाली से निकलने के बदहवास और हताश प्रयास के तौर पर अमेरिकी मज़दूर वर्ग में लॉटरी खेलने आदि की प्रवृत्ति बढ़ी है। 1990 के दशक के आँकड़ों के मुताबिक 10,000 डॉलर से कम आय वाले घर 50,000 डॉलर आय वाले घरों से तीन गुना अधिक राशि लॉटरी पर ख़र्च कर रहे थे। 2004 में 16 लाख लोगों ने व्यक्तिगत दीवालियेपन की घोषणा की, जो पिछले दशक से दोगुनी संख्या है।

यही कारण है इराक़ युद्ध जैसे अलोकप्रिय युद्ध में भी अमेरिका के नौजवान स्वयंसेवा करने और मरने को तैयार हो जा रहे हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि इराक़ युद्ध और अमेरिकी साम्राज्यवाद के सारे काले कारनामों की आर्थिक कीमत अमेरिका की जनता से भी वसूली जाती है। बुश ने इराक़ युद्ध शुरू होने से पहले कहा था कि इस युद्ध में करीब 50 बिलियन डॉलर ख़र्च होंगे। लेकिन युद्ध के अब तक चलने के बाद एक पूँजीवादी अर्थशास्त्री जोसेफ़ स्टिग्लिट्ज़ ने बताया कि अब तक 200 ट्रिलियन डॉलर से भी अधिक राशि इराक़ युद्ध पर ख़र्च हो चुकी है। ख़र्च के इतने अधिक होने की एक बहुत बड़ी वजह स्वयंसेवी सेना है। इस स्वयंसेवी सेना में शामिल होने के बोनस के तौर पर तत्काल 40,000 डॉलर दिये जाते हैं। नतीजतन, बेरोज़गार और ग़रीब अमेरिकी नौजवानों की एक बड़ी संख्या होती है जो सेना में शामिल होती है। कारण राष्ट्रवाद या देशप्रेम नहीं होता, ग़रीबी और बदहाली होती है। और इस ग़रीबी और बदहाली के कारण यह निम्नमध्यमवर्गीय अमेरिकी युवा अमानवीकृत भी हो जाता है और इराक़ में अमानवीय कृत्यों को अंजाम देता है।

इन सबके बावजूद भी, आज अमेरिकी मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा अमेरिकी व्यवस्था से नफ़रत नहीं करता। एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिकी जनता का दो-तिहाई हिस्सा यह मानता है कि सफलता व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर करती है और जो सक्षम होता है वह सफल और अमीर हो ही जाता है। इस तरह के दृष्टिकोण के कई कारण हैं। एक तो यह है कि अमेरिका का मज़दूर वर्ग अमीर-ग़रीब के बीच की बढ़ती खाई से त्रस्त है लेकिन वह उस किस्म की ग़रीबी का शिकार नहीं है जिस किस्म की ग़रीबी का शिकार तीसरी दुनिया के देशों का मज़दूर वर्ग है। दूसरा कारण यह है कि अमेरिकी शासक वर्ग और मीडिया ने पिछले लम्बे समय से अमेरिकी जनता के भीतर एक किस्म का व्यक्तिवाद भरता रहा है। इस व्यक्तिवाद के कारण अमेरिका का मज़दूर और आम मेहनतक़श अपनी तक़लीफ़ों के पीछे व्यवस्था का हाथ नहीं देखता, बल्कि क्षमता, किस्मत और संयोग का हाथ मानता है। व्यवस्था पर सवाल उठाने वाली उसकी दृष्टि को ही भोथरा कर दिया गया है। इसका आर्थिक कारण यह है कि अमेरिकी शासक वर्ग दुनिया भर में अपनी साम्राज्यवादी लूट के बूते पर अपने मज़दूर वर्ग को इतनी सुविधाएँ और घूस दे सकता है कि वह बगावत न कर जाये। यही कारण है कि अमेरिकी मज़दूर

(पेज 8 पर जारी)

आस्था की राजनीति की धुन्ध में खो गये हैं जनता के बुनियादी मुद्दे

(पेज 1 से आगे)

मानते चले आ रहे हैं। लेकिन इस ताज़ा प्रकरण ने एकबात और साबित कर दिया कि कांग्रेस की राजनीतिक आस्था कितनी पिलपिली है। विज्ञान, वैज्ञानिक इतिहास या तर्कपरक चिन्तन पर उसकी आस्था केवल वहीं तक है जहाँ तक उसके चुनावी स्वार्थों पर कोई नुकसान न पहुँचे। जहाँ तक धर्मनिरपेक्षता का सवाल है तो कांग्रेस की सच्ची धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों में कभी आस्था रही ही नहीं। उसने सर्वधर्म समभाव को धर्मनिरपेक्षता बताकर अपनी ही सुविधाजनक परिभाषा गढ़ ली है, जबकि सच्ची धर्मनिरपेक्षता का अर्थ होता है राज्य का धर्म से पूरी तरह अलगाव।

पिछले साठ सालों में अनेक बार ऐसे मौके आये हैं जब उसकी धर्मनिरपेक्षता की पोलपट्टी खुली है। राम मन्दिर के शिलान्यास और बाबरी मस्जिद के विध्वंस प्रकरण में क्रमशः राजीव गाँधी और पी.वी. नरसिंह राव की संदिग्ध भूमिका हिन्दू वोट बैंक अपने पक्ष में करने के लिए ही थी। शाहबानो प्रकरण में भी कांग्रेसियों ने मुस्लिम कट्टरपन्थियों को खुश करने की कोशिश की थी। इसके पहले इन्दिरा गाँधी ने भी पंजाब में अकाली दल के राजनीति का मुकाबला करने के लिए भिण्डरांवाले को मोहरा बनाकर सिख कट्टरपन्थ को प्रश्रय देने की राजनीति शुरू की थी। यह अलग बात है कि सिख कट्टरपंथ का भस्मासुर खुद इन्दिरा गाँधी को ही लील गया। अभी डेरा सच्चा सैदा विवाद में भी कांग्रेस ने अपने चुनावी स्वार्थों के लिए घृणित भूमिका निभायी।

कहने का मतलब यह कि जिस तरह संघ परिवार के लिए आस्था की राजनीति का सहारा लेना आचर्ज्यजनक नहीं है उसी तरह कांग्रेस के हलफ़नामे से पीछे हटने पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कांग्रेस की आस्था भी केवल चुनावी लाभ-हानि में है। इसके लिए वह कभी हिन्दू वोटरों को तुष्ट करने का प्रयास करती है तो कभी मुस्लिम वोटरों को। संघ परिवार जब कांग्रेस पर मुस्लिम तुष्टीकरण का आरोप लगाता है तो यह उसके कट्टर हिन्दुत्ववादी एजेण्डे के तहत मुस्लिम तुष्टिकरण की राजनीति का सहारा लेती है।

आस्था के अखाड़े में नूरांकुश्ती

रामसेतु प्रकरण में हलफ़नामा दायर करने और फिर वापस लेने के मामले में कांग्रेस ने एक सोची समझी लापरवाही दिखायी है। वह अच्छी तरह जानती है कि रामसेतु का मसला राजनीति का है इतिहास का नहीं। यह मुमकिन ही नहीं कि सुप्रीम कोर्ट में सरकार की ओर से दायर किये जाने वाले किसी हलफ़नामे में इस तरह की लापरवाही हो। हलफ़नामा दायर करते समय कांग्रेसियों को अच्छी तरह मालूम था कि संघ परिवार इसपर हल्ला मचायेगा, फिर वह उसे वापस ले लेगी। दरअसल, कांग्रेस एक तीर से दो शिकार करना चाहती थी। मुस्लिम और हिन्दू दोनों वोटरों को तुष्ट करने की घिनौनी राजनीति। हिन्दुत्ववादी राजनीति और तथाकथित मुस्लिम तुष्टीकरण की राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे पर टिका है इसलिए, रामसेतु मसले पर कांग्रेस और संघपरिवार मिली-जुली कुश्ती लड़ रहे हैं। इस कुश्ती में कभी किसी का पलड़ा भारी दिखेगा कभी कोई बैकफुट पर आयेगा लेकिन न कोई हारेगा न कोई जीतेगा और अगले लोकसभा चुनाव तक यह मुसल्सल चलता रहेगा।

चुनावी राजनीति के दोराहे पर कांग्रेस

दरअसल, चुनावी राजनीति की अपनी जरूरतों को पूरा करने की कोशिश में कांग्रेस अक्सर दो राहे पर खड़ी नज़र आती है। पहले कांग्रेस का परम्परागत वोट-बैंक ब्राह्मन, दलित और मुसलमान समीकरण पर आधारित था। लेकिन 1980 का दशक शुरू होने के बाद से, जबसे हिन्दुत्ववादी राजनीति का उभार शुरू हुआ, कांग्रेस ने भी हल्की केसरिया लाइन या नरम हिन्दुत्व की लाइन का प्रयोग शुरू किया जो राममन्दिर शिलान्यास प्रकरण में राजीव गाँधी और बाबरी मस्जिद विध्वंस प्रकरण में पी.वी. नरसिंह राव की भूमिका में नज़र आता है। लेकिन इस प्रयोग में कांग्रेस को मुँह की खानी पड़ी। 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम'। मुख्यतः सवर्ण हिन्दू वोट भाजपा की झोली में गिरने लगे और दलित-मुसलमान वोट-बैंक भी हाथ से निकल गया। नतीजतन उसे न केवल केन्द्र की सत्ता गँवानी पड़ी वरन् सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में वह आज तक ठीक से खड़ी नहीं हो सकी है।

नरम हिन्दुत्व के प्रयोग की नाकामी ने एक बार फिर कांग्रेस को अपने परम्परागत वोट बैंक की ओर वापस लौटने के लिए बाध्य किया। लेकिन कम से कम उत्तर भारत में इस वोट बैंक पर सपा और बसपा के कब्जे के कारण उसकी वापसी मुश्किल लगती है फिर भी वह हताशापूर्ण कोशिश कर रही है। मुस्लिम वोट बैंक पर फिर से कब्जा जमाने के लिए वह एकओर जस्टिस राजेन्द्र सच्चर कमेटी की सिफारिशों को लागू करने की कवायदें कर रही है दूसरी ओर गरीब दलित आबादी को लुभाने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना, असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना जैसे अनेक झुनझुनों को बजा रही है। 'ग़रीबी हटाओ' के बाद अब कांग्रेस का नया नारा है—'कांग्रेस का हाथ ग़रीबों के साथ'। लेकिन इन सबके बावजूद वह अब भी नरम-हिन्दुत्व की लाइन के प्रयोग से पूरी तरह तौबा करती नज़र नहीं आ रही। उसकी यही दुविधा उसे आस्था के अखाड़े में भी भाजपा के साथ नुरांकुश्ती के लिए मजबूर करती है। विगत उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में राहुल गाँधी का करिश्मा कुछ खास काम नहीं आया था लेकिन अभी भी उसकी आस टूटी नहीं है। उन्हें पार्टी महासचिव नियुक्त कर और उत्तर प्रदेश के अपने छात्र-युवा संगठनों का प्रभारी नियुक्त कर उसने आखिरी दाँव लगा दिया है।

देशभक्ति और हिन्दुत्व का केसरिया माजून

फिलहाल चुनावी राजनीति के स्टॉक एक्सचेंज में केसरिया कम्पनी अपने सेंसेक्स सूचकांक चढ़ाने के लिए हताशापूर्वक हाथ-पैर मार रही है। उसे कोई नया चुनावी मसाला फिलहाल हाथ नहीं लग पा रहा है। इसलिए वह बाज़ार में 'एक्सपाइरी डेट' खत्म हो चुके माल को ही फिर से उतारने पर मजबूर है। उसके चिन्तन शिविरों का यह नतीजा निकला कि परमाणु क़रार पर देशभक्ति का पाखण्ड बहुत अधिक मददगार नहीं होने वाला क्योंकि इस मामले में उसका भी दामन पाक़-साफ़ नहीं। इसीलिए, वह इस मसले पर संसद में बहस करने से कतराती रही। इसी बीच रामसेतु मसले पर हलफ़नामे ने उसे फिर राम की शरण में जाने का अवसर दे दिया। फिलहाल, भाजपाई 'थिंक टैंक' आश्वस्त नहीं हो पा रही है कि केन्द्र की राजनीति में उनका वनवास देशभक्ति के भरोसे खत्म होगा या राम भरोसे, इसलिए वह दोनों के माजून मतदाताओं को चटाने की कोशिश कर रही है।

वामपन्थी सरकारी दुल्हनों की चुनावी नख़रेबाज़ियाँ

परमाणु क़रार के मसले पर सरकारी वामपन्थी दुल्हनों ने जो रार मचायी थी उससे लोगों को यह भ्रम होने लगा था कि लगता है इस बार वे तलाक़ लेकर ही मानेंगी। लेकिन यह केवल चुनावी नख़रेबाजी थी। दरअसल, अभी तलाक़ लेने का माकूल वक़्त नहीं आया है। वे फिलहाल जनता की अदालत में अपने एतराज की दरख्वास्त देकर फैसले को टालना चाहती हैं ताकि सनद रहे। अभी केन्द्र सरकार का कार्यकाल खत्म होने में डेढ़ साल बाक़ी है तबतक कांग्रेसी अपने व्यवहार से नाराज़गी के कई नये मसले दे देंगे। वैसे भी पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य अपने हालिया एक बयान में कह चुके हैं कि परमाणु उद्योग को आगे बढ़ाने पर उन्हें कोई उसूली विरोध नहीं है। हालाँकि, जनता अभी ठीक से समझ ही नहीं पायी है कि उनका विरोध आखिर किस बात पर है? इसलिए, सरकारी कॉमरेड चुनावों तक जनता को समझाते रहेंगे और अधिक से अधिक समय तक सरकारी पार्टी के सारे मजे लूटते रहेंगे।

चुनावबाजों का एजेण्डा—गैर-मुद्दों को मुद्दा बनाओ! हमारा ऐजेण्डा—बुनियादी मुद्दों को मुद्दा बनाओ!!

अपने-अपने वोट बैंक के लिये अलग-अलग मुद्दों पर अलग-अलग भाषा बोलने वाली और एक दूसरे के विरोध में खड़ी नज़र आने वाली सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियों का बुनियादी एजेण्डा और नारा एक ही है—'गैरमुद्दों को मुद्दा बनाओ! बुनियादी मुद्दों को हर हाल में दबाओ!! इस तरह अपने अपने ढंग से पूँजीपति वर्ग की सेवा करो, उसके वर्ग हितों की हिफ़ाजत करो।

आज देशी और विदेशी पूँजी की लगातार बढ़ती बर्बर लूट और आम मेहनतक़श अवाम की तबाही बर्बादी सबसे अहम मुद्दा है। सारी पार्टियाँ कभी देश भक्ति के नाम पर तो कभी आस्था के नाम पर तो कभी किसी अन्य बहाने इस बुनियादी मुद्दे को दबाने की कोशिशें में लगातार जुटी हुई हैं। इसलिए, मज़दूर वर्ग की वर्ग-राजनीति का यह बुनियादी तक़ाजा है कि इन बुनियादी मुद्दों को ज़ोर-शोर से उठाया जाये। मज़दूर वर्ग की रोजगार सुरक्षा, बढ़ती महंगाई और शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास सहित अन्य जनवादी अधिकारों के मुद्दों पर प्रचार व आन्दोलन को तेज़ किया जाये। इसके साथ ही पूँजीवादी सत्ता और राजनीति के असली चरित्र को उजागर करने की ज़रूरत है जिससे मेहनतक़श अवाम की क्रान्तिकारी चेतना को उभारा जा सके और पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी जनसंघर्ष को तीखा किया जा सके।

राम सेतु आस्था का सेतु या राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का हेतु

(पेज 1 से आगे)

पहले अस्तित्व में था जब भगवान राम का राज्य था। जबकि विश्वभर में मानव विकास सम्बन्धी तमाम वैज्ञानिक अध्ययनों का निष्कर्ष यह है कि आधुनिक मानव (होमो सेपियंस प्रजाति) का आविर्भाव केवल दो लाख वर्ष पूर्व हुआ है। इस तरह संघ परिवार के तमाम दावे वैज्ञानिक अध्ययनों या निष्कर्षों पर आधारित न होकर पौराणिक कथाओं या कपोल कल्पनाओं पर आधारित है। इन्हीं तमाम वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा अदालत में दाखिल पहले हलफ़नामे में कहा गया था कि राम कोई ऐतिहासिक चरित्र नहीं है वरन पौराणिक चरित्र है। इसलिए रामसेतु तोड़ने से किसी की धार्मिक आस्था पर कोई चोट नहीं पहुँचेगी। इसके बाद संघ परिवार ने बावेला खड़ा किया।

दरअसल, संघ परिवार की समूची विचारधारा ही विज्ञान विरोध, इतिहास निषेध और मानवीय विवेक एवं तर्कणा के स्थान पर अन्ध आस्था की बुनियाद पर टिकी है। हर प्रगतिशील विचार एवं भविष्योन्मुखी परियोजना की ओर पीठ करके खड़ा होने से ही उसका राजनितिक एजेण्डा आगे बढ़ता है। अतीत के आनुभविक प्रेक्षणों और अटकलबाजियों को वैज्ञानिक तथ्यों के रूप में प्रचारित करना, मिथक और इतिहास का घालमेल कर एक तरह के मिथिहास (या मिथ्या इतिहास) को इतिहास के आसन पर बैठाना, सामाजिक मूल्यों मान्यताओं के मामले में पोंगापन्थी या दकियानूसी विचारों को परम्पराओं के नाम पर प्रचारित करना—संघ परिवार के वैचारिक अभियान या सामाजिक ताने बाने को विशाक्त करने के अभियान के प्रमुख एजेण्डे हैं विज्ञान विरोध, पोंगा पंथ जनतंत्र विरोध और मानवद्वेष (विशेष रूप से स्त्री द्वेष) के मामले मे ये अपने वैचारिक मूलस्रोत इटली के फासीवाद और जर्मनी के नात्सीवाद से भी आगे निकलते हुए एक विशिष्ट भारतीय संस्करण तैयार किया है। यहाँ यहूदी विरोध का स्थान मुस्लिम विरोध ने ले लिया है और स्त्रीद्वेष पर परम्पराओं का मुलम्मा चढ़ा दिया गया है।

बहरहाल, जिस तरह राम मन्दिर/बाबरी मस्जिद विवाद का समाधान इतिहास या ऐतिहासिक तथ्यों में निहित नहीं था उसी प्रकार रामसेतु विवाद का समाधान भी इतिहास के तथ्यों में निहित नहीं है, क्योंकि यह इतिहास का नहीं राजनिति का मुद्दा है। कांग्रेस ने भी पहला हलफ़नामा वापस लेकर यही साबित किया है कि उसके लिए राजनितिक स्वार्थ वैज्ञानिक या ऐतिहासिक तथ्यों से ऊपर है। वैसे भी जिस पूँजीपति वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी ये पार्टियाँ करती हैं वह ऐतिहासिक रूप से आज प्रगति विरोधी हो चुका है। आज कारखाना या उद्योग संचालन के लिए ना अपने मुनाफ़े को आगे बढ़ाने के लिए जरूरी मात्रा में विज्ञान या तकनीक से अधिक वैज्ञानिक चिन्तन उसके लिए खतरनाक हो चुका है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी विज्ञान के अलावा समाज में पोंगापन्थ, तर्कहीनता, अन्धआस्था और हर प्रकार के प्रगतिविरोधी विचारों की मौजूदगी और व्यापक फैलाव में वह अपना दीर्घजीवन देखता है। इसलिए, चाहे संघ परिवार या उसके तमाम मुख-मुखौटे हों या कांग्रेस और अन्य चुनावी पार्टियाँ-उनका असली मकसद देशी विदेशी पूँजी की सेवा करना है और अपने राजनीतिक स्वार्थों की हिफाजत करना है। रामसेतु इनके लिए आस्था का सेतु नहीं वरन केवल राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का हेतु है।

अमेरिकी समाज में अमीर-ग़रीब

(पेज 7 से आगे)

वर्ग उतना रैडिकलाइज़ नहीं होता कि विद्रोही तेवर अपनाए। जैसा कि प्रसिद्ध अमेरिकी क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी जॉन रीड ने कहा था, अमेरिकी मज़दूर वर्ग दुनिया का राजनीतिक तौर पर सबसे असचेत मज़दूर वर्ग है जिसके दिमाग़ पर शासक वर्गों के विचारों का प्रभाव बेहद अधिक है और वह उससे बहुत अधिक प्रभावित है।

अमेरिकी मज़दूर वर्ग के रैडिकलाइज़ होने की सम्भावना इसी सूरत में बन सकती है कि अमेरिका की साम्राज्यवादी लूट पर चोट की जाये जिससे कि उसके लिए अपने देश की जनता को वह सहूलियतें देना मुश्किल हो जाये जिनकी बदौलत वह उसका मुँह बन्द रखता है। और ऐसा तभी सम्भव है जब उन देशों में मज़दूर सत्ताएँ स्थापित हों जिन देशों में अमेरिकी लूट सबसे अधिक है, यानी कि तीसरी दुनिया के देश। कहने का मतलब यह है कि अमेरिका जैसे उन्नत पूँजीवादी देशों में क्रान्ति की लहर तभी ज़ोर पकड़ सकती है जब तीसरी दुनिया के देशों में समाजवादी क्रान्तियाँ हों और मज़दूर सत्ताएँ क़ायम हों और वहाँ पर अमेरिकी लूट असम्भव हो जाये। आँकड़े बताते हैं कि आज अगर सिर्फ़ भारत और चीन अपने आपको वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से काट लें और अपने देश में साम्राज्यवादी लूट पर रोक लगा दें, साम्राज्यवादी निगमों की सम्पत्ति जब्त कर लें और सारे विदेशी कर्ज़ों को रद्द कर दें तो अमेरिकी अर्थव्यवस्था डावाँडोल हो जाएगी। और अगर ब्राज़ील और मेक्सिको जैसे देश भी इसी राह पर चल पड़े तो अमेरिकी अर्थव्यवस्था के लिए अपना प्रभुत्व कायम रख पाना असम्भवप्राय हो जाएगा। इसलिए, जैसा कि सर्वहारा के महान नेता लेनिन ने कहा था, साम्राज्यवाद के युग में क्रान्तियों का केन्द्र यूरोप और अमेरिका से खिसक कर तीसरी दुनिया के देशों की ओर आ गया है। आज भी यह बात सच है और आज इन तमाम देशों में ऐसी सम्भावनाएँ बन भी रही हैं कि निकट भविष्य में मज़दूर वर्ग के जुझारू संघर्ष खड़े हों जो कालान्तर में किसी व्यापक सामाजिक- आर्थिक रूपान्तरण की तरफ़ ले जायें।

अभिनव

बढ़ती असमानता–एक विश्वव्यापी परिघटना

अमीर और ग़रीब के बीच आर्थिक असमानता लगातार बढ़ती जा रही है। आज यह एक विश्वव्यापी परिघटना है। दुनिया का कोई भी देश इससे बचा नहीं है। आज दुनिया भर में बढ़ रही आर्थिक असमानता की सारी दुनिया के पूँजीवादी अखबारों-पत्रिकाओं में चर्चा हो रही है। इस परिघटना पर अनेकों रिपोर्टें तथा पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। विश्व पूँजीवाद के बौद्धिक चाकर तथा दूरअन्देश राजनीतिज्ञ अमीरी-ग़रीबी के बीच बढ़ रही असमानता पर चिन्ता प्रगट कर रहे हैं, इस प्रक्रिया के खतरनाक भावी परिणतियों के बारे में अपने आकाओं (पूँजीपतियों) को आगाह कर रहे हैं तथा इस प्रक्रिया को रोकने के लिये नीम-हकीमी नुस्खे सुझा रहे हैं। वहीं दुनिया भर के जन-पक्षधर लेखक-पत्रकार इस प्रक्रिया से सम्बन्धित तथ्य जनता के सामने लाकर, विश्व-साम्राज्यवादी पूँजीवादी शोषक व्यवस्था की क्रूरताओं को नंगा कर रहे हैं।

पूँजीवाद तथा इससे पहले के वर्गीय समाजों (सामन्तवाद, गुलामदारी) के लिये भी अमीर-ग़रीब के बीच आर्थिक असमानता को नई परिघटना नहीं है। जब से मानव समाज का शोषक तथा शोषित वर्गों में विभाजन हुआ तभी से ही मुट्ठीभर शोषक बहुसंख्यक मेहनतक़श जनता के श्रम की गाढ़ी कमाई की लूट के बदौलत ऐय्याशी भरा जीवन बिताते रहे हैं। जहाँ उत्पादन के साधनों पर काबिज मुट्ठीभर शोषकों के लिये इस धरती पर स्वर्ग निर्मित किया गया, वहीं उत्पादन के साधनों से वंचित मेहनतक़शों को नर्क से भी बदतर जिन्दगी नसीब हुई है। उत्पादक शक्तियों के अभूतपूर्व विकास के बलते मौजूदा पूँजीवादी विश्व व्यवस्था में अमीर तथा ग़रीब के बीच असमानता ने पुराने सभी रिकार्ड तोड़ दिये हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था ने अस्तित्व में आते ही जहाँ एक ओर सुख-समृद्धि के ऊँचे मीनार, ऐय्याशी से टापू निर्मित किये, वहीं इसने ग़रीबी, भूखमरी, कंगाली के महासागर को भी जन्म दिया। एक ओर पूँजी का अम्बार तथा दूसरी ओर मेहनतक़श जनता का कंगालीकरण एक ही प्रक्रिया यानी पूँजी संचय की प्रक्रिया के अपरिहार्य उत्पाद हैं। यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अन्तर्निहित नियम है।

पूँजीपति मज़दूरों के शोषण से हासिल अधिशेष को लगातार पूँजी में बदलते हैं, यानी वह नई मशीनों, नई तकनीक पर निवेश करते हैं या नये कारखाने लगाते हैं। राजनीतिक अर्थशास्त्र की भाषा में इसे पूँजी का संकेद्रण कहते हैं। जो पूँजीपति नई तकनीक पर निवेश करने तथा उत्पादन को विस्तारित करने में असफल रहते हैं, वह दूसरे पूँजीपतियों के मुकाबले में टिक नहीं पाते। उनके कारखाने या उत्पादन के अन्य साधन दूसरे पूँजीपतियों द्वारा हड़प लिये जाते हैं। इस प्रक्रिया को पूँजी का केन्द्रीकरण कहते हैं। पूँजी का संकेद्रण तथा केन्द्रीकरण ही मिलकर पूँजी संचय कहलाते हैं। विश्व सर्वहारा के महान अध्यापक **कार्ल मार्क्स** ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अपने विश्लेषण में कहा है कि पूँजी संचय यानी पूँजी के संकेद्रण तथा केन्द्रीकरण की प्रक्रिया पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक अपरिहार्य नियम है। लगातार बढ़ती पूँजी संचय की प्रक्रिया के बगैर पूँजीवाद जीवित नहीं रह सकता। आज के पूँजीवादी विश्व में पूँजी संचय की प्रक्रिया पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कार्ल मार्क्स द्वारा किये गये विश्लेषण की पुष्टि कर रही है। पूँजी संचय की प्रक्रिया पूँजीवादी समाज को दो समूहों में बाँट देती है, एक ओर वह मुट्ठीभर अमीर होते हैं, जो उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करते हैं, दूसरी ओर बहुसंख्यक आबादी ऐसे मेहनतक़शों की होती है, जिनके पास अपनी श्रम शक्ति बेचने के सिवाय अन्य कोई भी जीविका के साधन नहीं होते।

असमान आर्थिक विकास पूँजीवाद का एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण है एक देश के भीतर भी आर्थिक तौर पर विकसित तथा पिछड़े इलाके पैदा करता है तथा विश्व स्तर पर भी अलग-अलग देशों के बीच आर्थिक असमानता को जन्म देता है।

पिछली सदी की शुरुआत मज़दूर क्रान्तियों से हुई थी। बीसवीं शताब्दी खासतौर पर इसका पूर्वार्द्ध मजदूर आन्दोलनों तथा मज़दूर क्रान्तियों के उफान का समय था। मज़दूर आन्दोलन की मजबूती, मज़दूर क्रान्तियों के डर तथा आन्तरिक संकटों से परेशान विश्व के अनेक देशों के पूँजीवादी हुक्मरान पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ समय के लिये कीन्सवादी कल्याणकारी राज्य की नीतियाँ अपनाने के लिये मजबूर हुए थे। इन नीतियों के जरिये उन्होंने आर्थिक असमानता को एक हद तक नियंत्रित करने तथा श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार लाने की कोशिशें कीं। लेकिन अस्सी के दशक से फिर से दुनिया भर के शोषक हुक्मरानों ने 'कल्याणकारी राज्य' का मुखौटा उतारना शुरू कर दिया। आज पूँजीवादी व्यवस्था के रक्त सने चेहरे से 'कल्याणकारी राज्य' का मुखौटा पूरी तरह से उतर चुका है। इसीलिये आज सभी की सभी पूँजीवादी अलामतों पर एक बार फिर से चर्चा छिड़ी है। इस चर्चा में दुनिया भर के देशों के भीतर तथा देशों के बीच बढ़ रही आर्थिक असमानता पर चर्चा भी शामिल है। आइये अब आज के पूँजीवादी विश्व में आर्थिक असमानता के तथ्यों पर गौर करें। *वर्ल्ड इंस्टीच्यूट फार डिवेलपमेण्ट इक्नामिक्स* ने अपनी एक रिपोर्ट में पूरे विश्व में परिवार सम्पत्ति के ढाँचे का ब्यौरा दिया है। रिपोर्ट के मुताबिक विश्व के सबसे अमीर 10 प्रतिशत परिवारों के पास विश्व की कुल दौलत का 85 प्रतिशत हिस्सा है जबकि निचली 50 प्रतिशत आबादी के पास सिर्फ़ 1 प्रतिशत हिस्सा ही है। रिपोर्ट दिखाती है कि विश्व के ऊपर के 10 प्रतिशत अमीरों में से हर एक के पास औसत निचले 10 प्रतिशत व्यक्तियों से 3000 गुना अधिक दौलत है।

क्षेत्रवार अमीरों तथा ग़रीबों के बीच और भी अधिक असमानता है। उत्तरी अमरीकी परिवारों के पास विश्व की कुल सम्पत्ति का 34 प्रतिशत हिस्सा है, योरोपीय परिवारों के पास 30 प्रतिशत तथा अमीर एशियाई खाड़ी के देशों के परिवारों के पास 24 प्रतिशत हिस्सा है।

लातिनी अमरीकी तथा कैरिबियाई परिवारों का विश्व की कुल सम्पत्ति में हिस्सा सिर्फ़ 4 प्रतिशत है। अफ्रीकी परिवार सबसे अधिक ग़रीब हैं, जिनके पास सिर्फ़ 1 प्रतिशत हिस्सा है। चीन तथा भारत यहाँ विश्व की लगभग 45 प्रतिशत आबादी रहती है का हिस्सा क्रमशः 3 प्रतिशत तथा 1 प्रतिशत है।

जिस तरह विश्व स्तर पर अमीर तथा ग़रीब के बीच असमानता लगातार बढ़ती जा रही है, इसी तरह से अलग-अलग देशों के भीतर भी अमीर ग़रीब के बीच असमानता लगातार बढ़ती जा रही है। ब्रिटेन में ऊपरी 1 प्रतिशत अमीर आबादी राष्ट्रीय दौलत के 24 प्रतिशत पर काबिज है। अमेरिका में भी यही हाल है। एक अमेरिकी लेखक रार्बट फरैंक ने अभी-अभी प्रकाशित हुई अपनी किताब 'रिचीस्तान' (यानी अमीरस्तान) में अमेरिकी अमीरों की दौलत तथा उनके विलासितापूर्ण जीवन का खुलासा किया है। उनके मुताबिक 2004 तक अमरीका के ऊपरी 1 प्रतिशत सुपर अमीरों की सलाना आमदनी 1.35 ट्रिलीयन डालर भी (लगभग 42 लाख करोड़ रुपये), जो कि पूरे फ्रांस, इटली तथा कनाडा के कुल श्रमिकों के सलाना वेतन से अधिक थी। इनके द्वारा घरेलू नौकरों पर किया जाने वाला सलाना खर्च ही 2 करोड़ रुपये (5 लाख डालर) था। लगभग इतना ही पैसा यह कल्बों की सदस्यता पर खर्च करते हैं। 1 करोड़ रुपये खुद को सुन्दर बनाने पर उड़ा देते हैं। इनके द्वारा पहनी जाने वाली घड़ी की कीमत ही तीन करोड़ रुपये है। 1970 में अमरीकी कम्पनियों के चीफ एक्जक्यूटिव आफिसर अपनी कम्पनी के आम कर्मचारियों से 40 गुना अधिक आमदनी हासिल करते थे। अब वह 170 गुना अधिक आमदनी हासिल करते हैं।

विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक यही हाल है। अपने देश पर निगाह डालें तो एक ओर यहाँ बड़े पूँजीपति घरानों के मुनाफ़ों में बड़े पैमाने पर वृद्धि हुई है वहीं मेहनतक़श जनता का जीवन और भी बदहाल हुआ है। भारत के सकल घरेलू उत्पादन में कारपोरेट मुनाफ़े 2002 में 3.7 प्रतिशत से बढ़कर 2007 में 9.1 प्रतिशत हो गये जबकि करोड़ों श्रमिकों की उजरतों का हिस्सा इसी समय के दौरान 31 प्रतिशत से घटकर 28.7 प्रतिशत रह गया। विश्व बैंक के मुताबिक भारत का आर्थिक असमानता को दिखाने वाला सूचकांक 1994 में 33.3 प्रतिशत से बढ़कर 2004 में 37.6 प्रतिशत हो गया है। चीन में भी यही स्थिति है। कम्युनिज़्म का नकाब पहने 1976 में चीन की राज्सत्ता पर काबिज हुये पूँजीवादी हुक्मरानों की नीतियों की बदौलत चीन आज दुनिया का सबसे अधिक गैर बराबरी वाला देश बन चुका है। चीन का गिनती सूचकांक 2003 मे 40.7 प्रतिशत था जो कि एक साल के भीरत ही 2004 में बढ़कर 47.3 प्रतिशत हो गया।

आज दुनिया में ही जहाँ अमीरों के महल बन रहे हैं, वहीं ग़रीबों, बेरोजगारों, झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों की संख्या भी तेजी से बढ़ती जा रही है। एक ओर जहाँ इस पूँजीवादी-साम्राज्यवादी विश्व के टापू निर्मित हुए हैं, वहीं ग़रीबी का महासागर भी खौल रहा है। ग़रीबी के इस महासागर में तैर रहे यह ऐय्याशी के टापू ज्यादा देर तक सुरक्षित नहीं रह सकते। कभी भी ग़रीबी के इस महासागर

(पेज 11 पर जारी)

एड्स का हौव्वा

(पेज 10 से आगे)

है वहीं नियमित टीकाकरण के प्रति पूरी तरह उदासीन बनी हुई है। पल्स पोलियो अभियान की असलियत को उजागर करने वाली अनेक गैर सरकारी रिपोर्टें आ चुकी हैं जिनमें पोलियो ड्रॉप्स के नुकसानदेह असर को सामने लाने के अलावा इन्हें उत्पादन करने वाली विदेशी कम्पनियों, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ और सरकारों के निहित स्वार्थी गँठजोड़ों की असलियत भी सामने आयी है। मालूम हो कि पश्चिमी विकसित दुनिया में पोलियो उन्मूलन के लिए ड्रॉप्स का उपयोग बन्द किया जा चुका है और उसके स्थान पर टीकाकरण को ज़्यादा कारगर माना जाता है। मतलब यह कि गोदामों में डम्प पड़े पोलियो ड्रॉप्स को तीसरी दुनिया के ग़रीब मुल्कों में खपाया जा रहा है। इन मुल्कों की सरकारें इस गोरखधन्धे में साथ दे रही हैं। भारत सरकार के केन्द्रीय बजट में पल्स पोलियो अभियान के लिए चालू वित्त वर्ष में 1289.38 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है जबकि नियमित टीकाकरण के लिए मात्र 300.5 करोड़ रुपये।

नियमित टीकाकरण के प्रति सरकार के इस संवेदनहीन रवैये का नतीजा यह है कि देश में ग़रीबों के घरों में पैदा होने वाले बच्चे और गर्भवती स्त्रियाँ टीके न लगने से विभिन्न बीमारियों की चपेट में आकर असमय काल के गाल में समा जाती हैं। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III के अनुसार देश में टीकाकरण की दर केवल 43.5 प्रतिशत है जो 1998-99 में सम्पन्न सर्वेक्षण-II की तुलना में मात्र 1.5 प्रतिशत ही ज़्यादा है। हालत यह है कि तमाम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर सहायक नर्स मिडवाइफों और जिला टीकाकरण अधिकारियों के पद खाली पड़े हैं जबकि खुद सरकारी आँकड़े ही बताते हैं प्रसूति सम्बन्धी समस्याओं से भारत में हर सात मिनट में एक स्त्री की मौत हो जाती है और पाँच वर्ष से कम उम्र के 50 बच्चे हर 30 मिनट में मर जाते हैं।

इतना ही नहीं, राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III के ही आँकड़ों के अनुसार भारत में एक तिहाई स्त्रियाँ औसत से कम वजन की होती हैं। कुल स्त्रियों की 56.2 प्रतिशत और ग्रामीण स्त्रियों की 58.2 प्रतिशत आबादी खून की कमी की शिकार है। छह से 35 माह के नवजात शिशुओं में 79.2 प्रतिशत सामान्य से कम वजन के पाये गये। यह संख्या 1998-99 में हुए सर्वेक्षण-II से पाँच प्रतिशत ज़्यादा है।

कहना न होगा कि देश की आम जनता के स्वास्थ्य की यह दुरवस्था के पीछे संसाधनों की कमी का तर्क एक बेहूदा तर्क है। असल सवाल यह है देश की हुकूमत चलाने वाली जमातों को दवा कम्पनियों के मुनाफ़ों और अन्तरराष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों के दुराग्रहों की जितनी परवाह है उतनी आम जनता के स्वास्थ्य की नहीं। ये जमातें मासूम नहीं कि वे नासमझी के चलते उपलब्ध संसाधनों के वितरण के मामलों में गलत प्राथमिकताओं का निर्धारण करती हैं। एड्स और पोलियो उन्मूलन का हौव्वा खड़ाकर जनस्वास्थ्य को दाँव पर लगाना नासमझी नहीं निहित स्वार्थों से उपजी घोर संवेदनहीनता और मानवद्रोही रवैये की देन है।

दलालों से पीछा छुड़ाकर सही क्रान्तिकारी राह ...

(पेज 3 से आगे)

ऐतिहासिक मिशन की याद हमेशा दिलाई जाती रहनी चाहिए। बोनस, पी.एफ., वेतन बढ़ोत्तरी, बस्तियों में साफ-सफाई का प्रबन्ध, सेहत सुविधाओं आदि के संघर्ष के साथ-साथ हमेशा ही जनता को ये बात लगातार समझाई जानी चाहिए कि यह तो सिर्फ़ सुधारों का संघर्ष है–उनकी असल लड़ाई तो समाजवाद के लिए है। क्रान्तिकारियों द्वारा किया गया इस प्रकार का लगातार प्रचार इस बात की गारण्टी करेगा कि लोगों को अपने रोजमर्रे के संघर्षों के दौरान हासिल हुई हारों के बावजूद भी उनकी सक्रियता कभी धीमी न होगी। ये प्रचार जनता में से उनके सच्चे मायनों में क्रान्तिकारी नेताओं को आगे लाएगा। कहने की जरूरत नहीं कि जनता के राजनैतिक और आर्थिक संघर्षों के दौरान किया गया समाजवाद का प्रचार ही असल में जनता को समाजवादी विचारों से लैस करेगा।

जैसे कि पहले भी कुछ बात हो चुकी है कि जनता को इलाकाई स्तर पर संगठित करके ही आज के दौर में मज़दूर आन्दोलन आगे बढ़ सकता है। ठेकाकरण जैसे कारकों के चलते फैक्टरी स्तर पर आन्दोलन की सफलता की सम्भावना न के बराबर हो गई है। इलाकाई स्तर पर मेहनतक़श जनता को संगठित करने से एकाध फैक्टरी में छिड़े आन्दोलन की सफलता की सम्भावनाएँ कई गुना बढ़ जाएँगी। कहने की जरूरत नहीं कि यह रास्ता मुकाबलतन कठिन होगा लेकिन इसका एक फायदा भी ये होगा कि आन्दोलन शुरू से ही एक-एक मालिक के खिलाफ़ न होकर तमाम पूँजीपतियों और उनकी सरकार के खिलाफ़ होगा इस प्रकार से संघर्ष का चरित्र शुरुआती दौर से ही राजनैतिक शक्ल लेना। आर्थिक भटकावों से बचने के लिए, इस प्रकार यह राह काफ़ी सहायक सिद्ध होगा। इस राजनैतिक संघर्ष को समाजवाद के संघर्ष से जोड़ना क्रान्तिकारियों की कुशलता पर निर्भर करेगा।

पूरे देश की तरह ही लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन को भी इसी प्रकार आगे बढ़ाना होगा।

लखविन्दर

नारी सभा

रोटी और गुलाब का संघर्ष

यह एक सामूहिक गीत है जिसे 1912 में संयुक्त राज्य अमेरिका की तेईस हज़ार महिला मज़दूरों ने गाया था। ये पच्चीस अलग-अलग राष्ट्रीयताओं की तथा पैंतालीस अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाली थीं। इन महिलाओं ने तेजी से बढ़ते हुए वस्त्र उद्योगों को तीन महीनों तक (जनवरी-मार्च 1912) एकदम ठप्प कर दिया था। इससे पहले इतिहास में कभी इतनी संख्या में विभिन्न जगहों की महिलाएँ जीवन-निर्वाह से थोड़ी ज़्यादा मज़दूरी तथा बेहतर ज़िन्दगी के अधिकार की माँग को लेकर संयुक्त और इतने प्रभावी रूप से किसी हड़ताल में शामिल नहीं हुई थीं।

सम्पादक

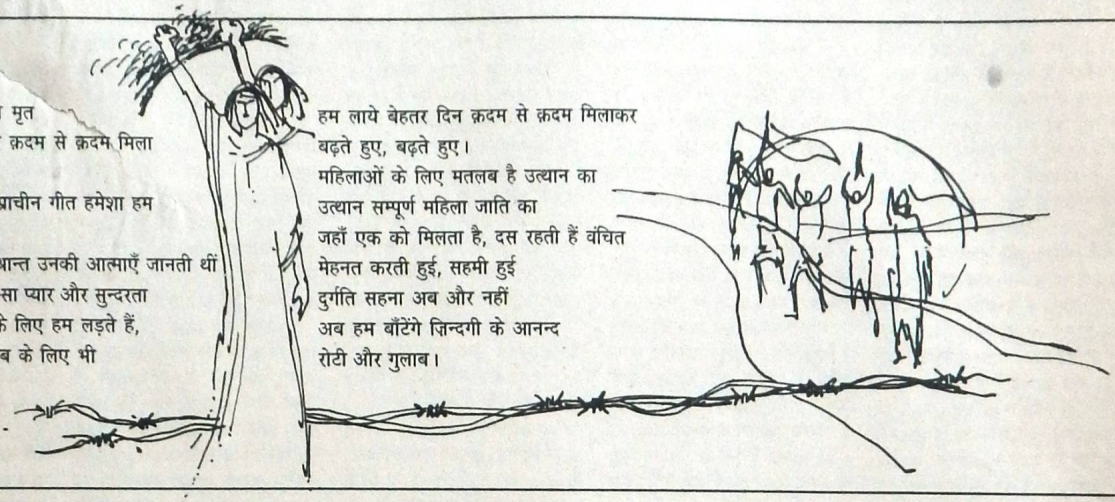

असंख्य महिलाएँ बनी मृत
जैसे-जैसे हम आ गये क़दम से क़दम मिला
बढ़ते हुए, बढ़ते हुए
रोटी के लिए उनका प्राचीन गीत हमेशा हम
गाते रहे, गाते रहे
कठोर मेहनत से परिश्रान्त उनकी आत्माएँ जानती थीं
थोड़ी-सी कला, थोड़ा-सा प्यार और सुन्दरता
यह रोटी ही है जिसके लिए हम लड़ते हैं,
पर हम लड़ते हैं गुलाब के लिए भी
जी हाँ गुलाब।

हम लाये बेहतर दिन क़दम से क़दम मिलाकर
बढ़ते हुए, बढ़ते हुए।
महिलाओं के लिए मतलब है उत्थान का
उत्थान सम्पूर्ण महिला जाति का
जहाँ एक को मिलता है, दस रहती हैं वंचित
मेहनत करती हुई, सहमी हुई
दुर्गति सहना अब और नहीं
अब हम बाँटेंगे ज़िन्दगी के आनन्द
रोटी और गुलाब।

एड्स का हौव्वा और आम जनता की सेहत दाँव पर

बिगुल संवाददाता

लखनऊ। अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के साथ-साथ सड़कों-चौराहों पर लगे विशाल होर्डिंग्स पर एच आई वी/एड्स के प्रति जागरूकता पैदा करने वाले तरह-तरह के विज्ञापनों को देखकर ऐसा लगता है मानो देश में यह बीमारी महामारी का रूप ले चुकी है। सरकार के सहयोग से तमाम एन.जी.ओ. जनता में जागरूकता पैदा करने के लिए एड्स जागरूकता रैलियाँ निकालते हैं, राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर की गोष्ठियाँ-सेमिनार और अनेक आयोजन होते रहते हैं। हॉलीवुड-बॉलीवुड के सेलिब्रिटीज इन आयोजनों में शिरकत करते हैं और एड्स से बचाव के तरीकों के बारे में जनता को 'शिक्षित-दीक्षित' करते रहते हैं। कुल मिलाकर ऐसा समां बाँधा जाता है गोया देश की स्वास्थ्य सम्बन्धी सबसे बड़ी समस्या एड्स से सम्बन्धित है। जबकि हकीकत यह है कि अभी हमारे देश में आम लोग साधारण कही जाने वाली मलेरिया, हैजा, टी.बी. आदि बीमारियों से मरते रहते हैं जो लगातार पहुँच से दूर होती जा रही स्वास्थ्य सुविधाओं और दारुण सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की देन हैं।

एक आकलन के अनुसार देश में हर रोज चार व्यक्ति मलेरिया के कारण मर जाते हैं। सरकारी आँकड़ों के ही अनुसार पिछले साल अठारह लाख लोग मलेरिया के शिकार हुए लेकिन इनमें से केवल 10 प्रतिशत रोगियों के खून की जाँच हो सकी। पूर्वी उत्तर प्रदेश में तीस वर्षों से अधिक समय से जापानी इन्सेफैलाइटिस का प्रकोप जारी है। हर साल सैकड़ों बच्चे इसकी चपेट में आकर मरते हैं लेकिन आज तक इसकी रोकथाम के लिए कारगर उपाय नहीं किये गये। अलबत्ता चुनावी राजनीतिक पार्टियाँ हर साल बच्चों की लाशों पर घिनौनी राजनीति का खेल खेलती रहती हैं। यही स्थिति डेंगू और चिकनगुनिया जैसी बीमारियों के बारे में भी बनी हुई है।

एड्स का हौव्वा खड़ा करने वाली सरकारें आम लोगों को चपेट में लेने वाली बीमारियों के प्रति केवल जुबानी जमा खर्च करती हैं या इनके नियंत्रण और रोकथाम के नाम पर बेअसर कवायदें करती रहती हैं। कहने को केन्द्र सरकार ने एक राष्ट्रीय रोग निगरानी प्रणाली बना रखी है जो महामारियों के फैलाव को नियंत्रित करने के लिए है लेकिन जापानी इन्सेफेलाइटिस और चिकनगुनिया जैसे व्यापक फैलाव वाली बीमारियाँ महामारी के दायरे में शामिल ही नहीं हैं। सरकार आम लोगों को अपनी चपेट में लेने वाली बीमारियों की रोकथाम के प्रति कितनी गम्भीर है इसका अन्दाज़ा इन पर होने वाले सरकारी खर्चों की मात्रा से भी लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय रोग नियंत्रण कार्यक्रम, जिसके अन्तर्गत टी.बी., कोढ़, साँस सम्बन्धी बीमारियाँ, अन्धता, आयोडीन की कमी से होने वाली बीमारियाँ शामिल हैं, के लिए वर्ष 2007-08 के केन्द्रीय बजट में केवल 884.06 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है जबकि अकेले राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के लिए 719.5 करोड़ रुपये दिये गये हैं। अकेले इस तथ्य से सरकार की प्राथमिकताएँ और जनस्वास्थ्य के प्रति उसका रुख साफ़ हो जाता है।

केन्द्र सरकार की प्राथमिकता सूची में एड्स नियंत्रण कार्यक्रम कितने ऊपर है इसका अनुमान केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसके लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय परिषद गठित की गयी है। इसमें कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों के अलावा 30 मंत्रालयों के प्रतिनिधि, निजी क्षेत्र और एन.जी.ओ. के प्रतिनिधि शामिल हैं।

दरअसल, दुनिया भर में एड्स का हौव्वा खड़ा करना दवा निर्माता बड़ी कम्पनियों, सरकारों के प्रतिनिधियों, नौकरशाहों और एन.जी.ओ. सेक्टर के लिए पैसा कमाने का एक बहुत बड़ा धन्धा बना हुआ है। अभी तक जिस एड्स नामक बीमारी के अस्तित्व के बारे में दुनिया के चिकित्सा विशेषज्ञों के

बीच ही मतभेद है उस बीमारी का हौव्वा खड़ा कर नयी-नयी महंगी दवाएँ बाज़ार में उतारकर दवा कम्पनियाँ अकूत मुनाफ़ा पीट रही हैं। अन्तरराष्ट्रीय फण्डिंग एजेंसियाँ, सरकारें और एन.जी.ओ. इस मुनाफ़ाखोरी के लिए एड्स का हौव्वा खड़ा कर माहौल बनाती हैं। इस धन्धे में सबसे गन्दी भूमिका एन.जी.ओ. वालों की है। विभिन्न सरकारी-गैर सरकारी फण्डिंग एजेंसी के टुकड़ों पर पलने वाले ये एन.जी.ओ. अक्सर फण्ड झटकने के लिए एड्स के फैलाव के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर आँकड़े प्रस्तुत करते हैं।

एड्स नियंत्रण के गोरखधन्धे में लिप्त एन.जी.ओ. की कारगुजारियों की पोल पिछले दिनों स्वयं केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री अंबुमणि रामदास ने अनजाने ही खोल दी। पिछली छह जुलाई को मंत्री महोदय ने एक बयान में कहा कि देश में एचआईवी संक्रमण के शिकार लोगों की संख्या केवल दो लाख पचास हजार है जो पहले के आकलनों की आधी संख्या है। मंत्री महोदय के बयान के समय उनके साथ राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन और एड्स सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि भी मौजूद थे। मंत्री महोदय ने यह भी बताया कि एड्स के फैलाव की दर भी केवल 0.3 प्रतिशत है जबकि पहले यह 0.9 प्रतिशत बतायी गयी थी। अंबुमणि रामदास ने ये घोषणाएँ राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के तीसरे चरण की शुरुआत के अवसर पर कीं। तीसरे चरण के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए 11,585 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

देश में एच.आई.वी/एड्स पीड़ितों की संख्याओं को लेकर सरकारी संस्थाओं, अन्तरराष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों और एन.जी.ओ. वालों के बीच कुछ अर्से से एक खींचतान चल रही है जिसके पीछे सबके अपने-अपने निहित स्वार्थ हैं। इस खींचतान की शुरुआत वर्ष 2002 में अमेरिका की राष्ट्रीय निगरानी रिपोर्ट आने के बाद हुई जिसमें कहा गया था कि भारत में वर्ष 2010 तक एचआईवी संक्रमण से पीड़ित लोगों की संख्या 20-25 लाख हो जायेगी। इस रिपोर्ट के आने के बाद इसी वर्ष बिल एण्ड मेलिन्दा गेट्स फाउण्डेशन ने भारत सरकार को 100 मिलियन डालर की खैरात दी। दिलचस्प बात यह है कि अन्तरराष्ट्रीय दाता एजेंसियाँ और इनकी खैरातों पर एड्स रोकथाम के धन्धे में लिप्त अनेक एन.जी.ओ. एड्स के फैलाव सम्बन्धी अमेरिकी रिपोर्ट के पूर्वानुमानों को ही बनाये रखना चाहते हैं।

देश की सरकार आँकड़ों को कम दिखाकर यह साबित करना चाहती है कि एड्स नियंत्रण की दिशा में वह कारगर ढंग से काम कर रही है। अंबुमणि रामदास द्वारा जारी किये गये ताजा आँकड़े इसलिए भी चौंकाने वाले हैं कि अभी पिछले ही साल सरकार ने देश में एचआईवी संक्रमित व्यक्तियों की संख्या 5 लाख 20 हजार बतायी थी। सरकार ने ये आँकड़े तब दिये थे जब संयुक्त राष्ट्र संघ की एड्स एजेंसी ने कहा था भारत में एचआईवी संक्रमित लोगों की संख्या 5 लाख सत्तर हज़ार है जो दक्षिण अफ्रीका से भी ज़्यादा है। भारत सरकार ने इसका प्रतिवाद करते हुए जो संख्या बतायी उसके बाद दक्षिण अफ्रीका और नाइजीरिया के बाद भारत तीसरे नम्बर पर आ गया। जाहिर है कि आँकड़ों के इस खेल में लिप्त सभी खिलाड़ियों के अपने-अपने निहित स्वार्थ हैं और इसके बीच आम आदमी की सेहत दाँव पर लगी है।

देश में जनस्वास्थ्य की तस्वीर कितनी भयावह है इसकी एक झलक इन तथ्यों से भी मिलती है। जहाँ एक तरफ़ सरकार पल्स पोलियो अभियान के नाम पर पानी की तरह पैसे बहा रही

(पेज 9 पर जारी)

देश कागज पर बना नक्शा नहीं होता

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में आग लगी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में सो सकते हो?
यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में लाश पड़ी हो
तो क्या तुम
दूसरे में गा सकते हो?
यदि तुम्हारे घर के एक कमरे में
लाशें सड़ रही हों
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में प्रार्थना कर सकते हो?
यदि हाँ
तो मुझे तुमसे। कुछ नहीं कहना है।
देश कागज पर बना
नक्शा नहीं होता
कि एक हिस्से के फट जाने पर
बाकी हिस्से उसी तरह साबुत बने रहें
और नदियां, पर्वत, शहर, गाँव
वैसे ही अपनी-अपनी जगह दीखे
अनमने रहे!
यदि तुम
यह नहीं मानते
तो मुझे तुम्हारे साथ नहीं रहना है।
इस दुनिया में
आदमी की जान से बड़ा। कुछ भी नहीं है

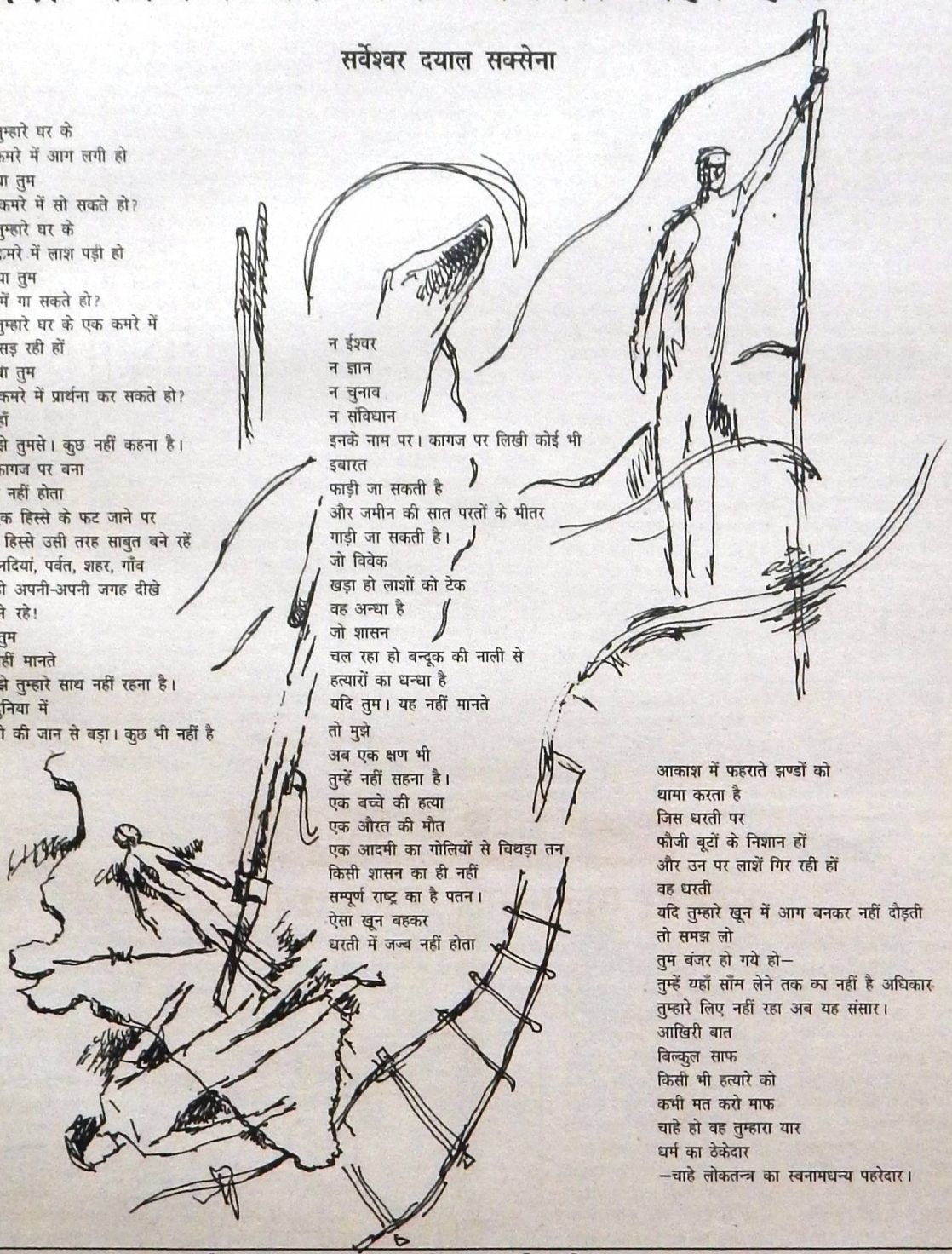

न ईश्वर
न ज्ञान
न चुनाव
न संविधान
इनके नाम पर। कागज पर लिखी कोई भी
इबारत
फाड़ी जा सकती है
और जमीन की सात परतों के भीतर
गाड़ी जा सकती है।
जो विवेक
खड़ा हो लाशों को टेक
वह अन्धा है
जो शासन
चल रहा हो बन्दूक की नाली से
हत्यारों का धन्धा है
यदि तुम। यह नहीं मानते
तो मुझे
अब एक क्षण भी
तुम्हें नहीं सहना है।
एक बच्चे की हत्या
एक औरत की मौत
एक आदमी का गोलियों से चिथड़ा तन
किसी शासन का ही नहीं
सम्पूर्ण राष्ट्र का है पतन।
ऐसा खून बहकर
धरती में जज्ब नहीं होता

आकाश में फहराते झण्डों को
थामा करता है
जिस धरती पर
फौजी बूटों के निशान हों
और उन पर लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में आग बनकर नहीं दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गये हो—
तुम्हें यहाँ साँस लेने तक का नहीं है अधिकार
तुम्हारे लिए नहीं रहा अब यह संसार।
आखिरी बात
बिल्कुल साफ
किसी भी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार
—चाहे लोकतन्त्र का स्वनामधन्य पहरेदार।

(पेज 9 से आगे)

बढ़ती असमानता—एक विश्वव्यापी परिघटना

से तूफ़ान आ सकता है, जो ऐय्याशी के इन टापुओं को तबाह कर सकता है।

इसी स्थिति से चिन्तित हैं आज विश्व पूँजीवाद के बौद्धिक चाकर। हमारे देश के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पिछले दिनों अपने पूँजीवादी शोषक मालिकों की यह भोली सलाह दी थी कि धन का अधिक प्रदर्शन न करें कि वह अपनी कम्पनियों के सी.ई.ओ.एस. की तनख्वाहें कम करें। उन्होंने देश के भीतर अमीरों-ग़रीबों में बढ़ रही असमानता पर चिन्ता जाहिर करते हुए कारपोरेट जगत को अधिक न्यायसंगत तथा मानवीय समाज बनाने के लिये आगे आने का आह्वान किया। पूँजीवादी व्यवस्था की सेवा में सारा जीवन लगा देने वाला व्यक्ति इतना भोला तो नहीं हो सकता कि वह ऐसी भोली उम्मीदें पाले जो कभी भी पूरी नहीं हो सकतीं। हाँ वह अपने मालिकों की सलामती के लिये परेशान-चिन्तित जरूर हैं।

पूँजीपतियों के एक अन्य अनीम एशिया विकास बैंक ने भी पिछले दिनों जारी किसे अपने एक रिपोर्ट में एशियाई देशों में बढ़ रही आर्थिक असमानता पर चिन्ता जताई है। बैंक के एक अर्थशास्त्री अफजल अली का कहना है "बढ़ रही असमानता, जो कि आज हम देख रहे हैं, ऐशियाई देशों के विकास के लिये स्पष्ट खतरा है।" मनमोहन सिंह की तरह बैंक ने भी इस असमानता को नियंत्रित करने के कुछ सुझाव दिये हैं, जो कि आज की दुनिया में पूरी तरह अव्यवहारिक है। लेकिन बैंक ने एक बात पते की कही है। बैंक का कहना है कि अगर इस बढ़ रही असमानता को रोका न गया तो कुछ भी हो सकता है। शान्तिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन भी हो सकते हैं तथा अमीरों-ग़रीबों के बीच गृहयुद्ध भी छिड़ सकता है। बैंक की बात में थोड़ा इजाफ़ा कर दें कि बढ़ रही असमानता, दिन-ब-दिन बदतर होती जा रही जीवन हालातों के विरुद्ध मेहनतक़शों के शान्तिपूर्ण प्रदर्शन भी एक समय के बाद हिंसक रूप ही धारण करेंगे। ऐसा करने के लिये उन्हें खुद पूँजीवादी हुक्मरान ही मजबूर करेंगे। पूँजीवादी दुनिया में श्रमिकों के संघर्षों का आज तक का अनुभव यही बताता है।

यही है आज के विश्व पूँजीवाद का भविष्य, जिसकी दिशा में यह तेज गति से बढ़ रहा है। जिस भविष्य को विश्व पूँजीवाद के बौद्धिक चाकर आज ही देख रहे हैं। आज पूँजीवादी शोषक व्यवस्था दुनिया भर के मेहनतक़शों के कन्धों पर लदा एक गैर जरूरी बोझ है। अब देखना यह है कि कब मेहनतक़श जनता अंगड़ाई लेकर उठती है और इस बोझ को हमेशा-हमेशा के लिये अपने कन्धों से उतार फेंकती है।

सुखदेव

पंजीयन संख्या - 71980\99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP\349\2006-08

रिलायंस द्वारा आन्ध्र प्रदेश में पर्यावरण की घातक तबाही

देश में तमाम स्वयंसेवी संगठनों से लेकर केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें तक पर्यावरण के विनाश को लेकर आजकल काफ़ी शोर मचा रही हैं। पर्यावरण को पहुँच रहे नुकसान पर टी.वी., रेडियो और अखबारों आदि के जरिये जनता के गले जमकर उपदेश उड़ेला जाता है। लोगों को कहा जाता है कि पर्यावरण का संरक्षण करो। इसको बचाओ! बात तो सही ही है! लेकिन पर्यावरण को हो रहे नुकसान के लिए ज़िम्मेदार कौन है? क्या आम जनता इसके लिए ज़िम्मेदार है? पहाड़ों को नंगा कौन कर रहा है? भूजल का दोहन कौन कर रहा है? समुद्र तटों का वाणिज्यीकरण कर उन्हें तबाह कौन कर रहा है? इसको जानना बहुत ज़रूरी है। सरकार और उसका पूरा प्रचार तन्त्र तो यूँ जताता है जैसे सारे पर्यावरण का सत्यानास जनता द्वारा जंगल से जलावन लकड़ी जुटाने, मछली पकड़ने आदि से हो रहा है! लेकिन तमाम अनुसंधानों से साबित किया है कि गाँवों में रहने वाली आम ग़रीब जनता, जंगलों में और उसके इर्द-गिर्द रहने वाले आदिवासी पर्यावरण के साथ सबसे अधिक सामंजस्य में रहते हैं। ऐसा वे सदियों से करते आ रहे हैं और पर्यावरण से वे जितना लेते हैं उतना ही उसे वापस भी कर देते हैं। फिर आखिर पर्यावरण को तबाह कर कौन रहा है? इसको पिछले दिनों अखबार में आयी एक ख़बर के जरिये समझने की कोशिश करते हैं।

हाल ही में ख़बर आयी है कि काकीनाड़ा में रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ लिमिटेड अपनी के.जी.गैस और ऑयल टर्मिनल स्थापित कर रहा है। अपनी इस परियोजना के तहत यह वहाँ स्थित सँकरी खाड़ियों को, जिन्हें क्रीक भी कहा जाता है, भर रहा है या उनका रुख बदल दे रहा है। इसके साथ ही रिलायंस वहाँ के मैंग्रोव वनों की छतरी को नष्ट कर रहा है। यह गैस टर्मिनल पूर्वी गोदावरी के गाँव पोलकुरू तक बनाया जाएगा। हाल ही में इस गाँव का दौरा कर रही पर्यावरणवादियों की एक टोली ने पाया कि आन्ध्र प्रदेश राज्य के आख़िरी बचे मैंग्रोव नष्ट कर दिये गये हैं। इन पर्यावरणवादियों को यह जानकर काफ़ी आश्चर्य हुआ और सदमा पहुँचा कि ज़्यादातर क्रीक भर दिये गये हैं और उनमें से एक को कोरियंगा वन्यजीवन संरक्षण उद्यान की तरफ़ मोड़ दिया गया है। इसके कारण इस उद्यान पर ही ख़तरा मण्डराने लगा है। आन्ध्र प्रदेश के कुछ आख़िरी बचे मैंग्रोव वनों में से एक को रिलायंस ने तबाह कर दिया है। मैंग्रोव वन मनुष्यों के दोस्त होते हैं। जब भी कोई समुद्री चक्रवात या तूफ़ान आता है तो उसके सारे झटके और आवेग को ये बसाहट के इलाकों में पहुँचने से पहले ही सोख लेते हैं। दो वर्षों पहले आयी सूनामी में दो लाख से अधिक जानें सिर्फ़ इसलिए चली गयीं क्योंकि मैंग्रोव वनों को बुरी तरह तबाह कर डाला गया था। पश्चिमी तट के मैंग्रोव कवर पहले ही तबाह किये जा चुके हैं। मुम्बई और गोवा के मैंग्रोव अमीरज़ादों की औलादों की ऐयाशी के लिए बनाए जाने वाले रिज़ॉर्टों और पाँच सितारा होटलों के निर्माण के कारण पहले ही तबाह किये जा चुके हैं। राज्य में पूर्वी गोदावरी को छोड़कर ये जीवनरक्षक मैंग्रोव वन सिर्फ़ कृणा और गोजटूर में बचे हैं। कोरियंगा वन्यजीदन संरक्षण उद्यान के अधिकारि रिलायस द्वारा की जा रही मनमानियों और उससे होने वाले नुकसान से भली-भाँति परिचित हैं, लेकिन इसके ख़िलाफ़ कुछ भी करने से किनारा कर लेते हैं। उनका कहना है कि इसमें बहुत बड़ी और शक्तिशाली कम्पनी संलग्न है।

मैंग्रोव समुद्री तटों पर बसे जनजीवन की समुद्री तूफ़ानों और चक्रवातों से रक्षा करते हैं। यह ख़तरनाक लहरों और तूफ़ानों की गति को सोख लेता है। साथ ही मैंग्रोव का रिश्ता जैव-विविधता से भी है। इन वनों के नष्ट होने की एक वजह पूँजीपतियों द्वारा संचालित झींगा-पालन उद्योग भी है। मैंग्रोव वनों की तबाही और बर्बादी से जो तात्कालिक नुकसान है वह है तूफ़ानों से जानमाल पर पैदा होने वाला ख़तरा। ऐसे किसी तूफ़ान की सूरत में मरने वाले लोग अम्बानी सरीखे मुनाफ़ाखोर पूँजीपति नहीं होंगे, बल्कि तटों पर रहने वाली आम ग़रीब मेहनतक़श आबादी होगी। अगर दूरगामी नुकसानों की बात करें तो वह है बहुमूल्य जैव-विविधता का नष्ट होना। इसका ख़ामियाजा आने वाले चन्द-एक वर्षों में नहीं बल्कि आने वाले लम्बे समय तक इंसानियत को भुगतना पड़ेगा।

मैंग्रोव और क्रीक्स को नुकसान पहुँचाये बिना भी रिलायंस के गैस व ऑयल टर्मिनल को स्थापित किया जा सकता है। लेकिन इन सावधानियों को बरतने और उस पर होने वाले ख़र्च की जहमत उठाने की रिलायंस जैसी कम्पनियाँ कोई ज़रूरत नहीं समझतीं। मैंग्रोव के नष्ट होने की अन्य वजहों में समुद्री पर्यटन के लिए बनाए जाने वाले होटल व रिज़ॉर्ट तथा झींगा-पालन उद्योग हैं। इनमें से कोई भी चीज़ इंसान की बुनियादी आवश्यकता नहीं है। ये तमाम कारगुजारियाँ सिर्फ़ और सिर्फ़ मुनाफ़ाखोर पूँजीपतियों की ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की हवस है। इनकी यह हवस न सिर्फ़ तटवर्ती इलाकों में रहने वाली आम आबादी के जीवन को ख़तरे और जोख़िम में डाल रही है बल्कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी के सन्तुलन को बिगाड़ रही हैं। मुनाफ़े पर आधारित इस पूँजीवादी व्यवस्था से हम और किसी बेहतर चीज़ की उम्मीद कर भी नहीं सकते क्योंकि इस पूरी व्यवस्था के केन्द्र में इंसानी ज़िन्दगी है ही नहीं। इसका केन्द्र मुनाफ़ा है। इस मुनाफ़े की अन्धी दौड़ में यह किसी भी हद तक जा सकती है। मनुष्य की जान की कोई कीमत नहीं है तो पर्यावरण की क्या कीमत होगी? पूँजीवाद में कोई भी पूँजीपति पर्यावरण और मानवीय जीवन जैसी चीज़ों के बारे में सोचने का जोख़िम नहीं उठा सकता। अगर वह लगातार अपने मुनाफ़े के बारे में नहीं सोचता और गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा में अन्य पूँजीपतियों को निगल जाने के बारे में नहीं सोचता तो जो ऐसा सोचता है वह उसे निगल जाएगा। मतलब कि उसे तुरत-फुरत मुनाफ़ा चाहिए। लम्बे दौर के फ़ायदे के बारे में सोचेगा तो उसे फ़ायदे को देखने के लिए ज़िन्दा नहीं बचेगा! इसलिए फटाफट मुनाफ़ा पीटो, चाहे इसके लिए पर्यावरण को तबाह करना पड़े, चाहे पूरी धरती को ही क्यों न तबाह करना पड़े। ऐसा ही हो भी रहा है। पूँजीवाद मुनाफ़े की अन्धी हवस में पूरी दुनिया को तबाह कर ही रहा है।

सूनामी की भीषण तबाही और जानमाल की बर्बादी के बाद केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें लगातार मैंग्रोव के संरक्षण के लिए चेतावनियाँ देती रहती हैं। यह बात वैज्ञानिक पहले ही बता चुके हैं सूनामी का नुकसान कहीं अधिक कम होता यदि मैंग्रोव वन सुरक्षित बचे होते। तो क्या सरकार आज मैंग्रोव वनों के न होने के कारण सूनामी की उस विकराल तबाही को भूल गयी? ऐसी बात नहीं है। लेकिन यह सरकार जो उन्हीं पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी का काम करती है जो पर्यावरण को तबाह कर रहे हैं, उससे आप यह उम्मीद नहीं रख सकते कि वह ऐसा करने से उन पूँजीपतियों को रोकेगी। उसी सरकार ने तो रिलायंस जैसे मुनाफ़ाखोरों को पर्यावरण को बर्बाद करने का लाइसेंस दे दिया है और आन्ध्र प्रदेश के कुछ आख़िरी बचे मैंग्रोव को भी उनके हवाले कर दिया है। पर्यावरण एक ऐसी व्यवस्था में ही बचाया जा सकता है जहाँ मनुष्य न तो पर्यावरण का स्वामी या व्यापारी होता है और न ही उसका गुलाम। पर्यावरण एक ऐसी व्यवस्था में ही बचाया जा सकता है जहाँ मुनाफ़ा केन्द्र न हो और मानव समाज पर्यावरण के साथ सामंजस्य और साहचर्य में रहता हो।

लता

आज़ादी के साठ साल

धनकुबेर माला-माल जनता तबाह बदहाल

अभी कुछ दिन पहले ही देश के हुक्मरान भारत की आज़ादी की 60वीं वर्षगाँठ के जश्न मनाकर हटे हैं। और जश्न मनाएँ भी क्यों न। इस आज़ादी ने अमीर वर्गों को छप्पड़ फाड़ कर सब कुछ हासिल करवाया है। वो खूब जोर से "मेरा भारत महान!" का नारा लगाने का सौभाग्य रखते हैं। वो तिरंगा झण्डा लहराते हुए गर्व महसूस कर सकते हैं क्योंकि इसी की छाँव तले उनके धन-दौलत में दिन दोगुनी रात चौगुनी बढ़ोत्तरी हुई है। और अब तो वो और भी ज्यादा खुशी से फुले होंगे। पूँजीवादी अखबार आजकल तेज रफ्तार विकास के आँकड़ों से भरे रहते हैं। टी.वी. चैनलों पर देश की समृद्धि की सैर पर ले जाया जा रहा है। वो झूठ थोड़े न बोल रहे हैं। वो सच कह रहे हैं। देश कितना आगे बढ़ गया है इससे अन्दाजा लगाइए–अब देश में 36 अरबपति हैं। जापान से भी ज्यादा! जापान में 28 हैं। बात इतनी ही नहीं। 1 लाख अमीर ऐसे हैं जिनके पास 4 करोड़ रुपये या इससे अधिक की जायदाद है। इस 1 लाख की गिनती की बात तो 2006 की है। इनकी गिनती 2005 में 83,000 भी। यानी कि सिर्फ़ एक वर्ष में 20.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी और अब 2007 खत्म होने वाला है। जब देश की गाड़ा चौड़ी सड़क पर इतनी तेज रफ्तार से दौड़ रही है तो हुक्मरान वर्गों का आज़ादी के जश्न मनाने का पूरा हक बनता है।

पिछले दिनों लुधियाना के एक नवधनाढ्य ने मनचाहा "फैंसी" मोबाइल नम्बर लेने के लिए साढ़े पन्द्रह लाख रुपये खर्च किए। उसके माता-पिता ने अपने बेटे की इस कामयाबी पर मिठाइयाँ बाँटी। धनकुबेरों को अपनी समृद्धि को जाहिर करने के लिए बहुत अवसर उपलब्ध करवाए जा रहे हैं। एक इश्तिहार के मुताबिक 46 लाख की 500 डरैगन गुर्खा सिगारें खरीदी जा सकती हैं। 80 साल पुराने ऊँट की हड्डियों से बने बक्सों में ये सिगारें रखकर दी जाएँगी। ये बक्से किसी समय राजस्थान के एक राजा के पास थे।

लेकिन ये चमकदार तेज रफ्तार विकास की गाड़ी ग़रीब मेहनतक़श जनता को बिना कुचले आगे नहीं बढ़ रही। देश के 70 प्रतिशत मजदूरों की रोज की कमाई बीस रुपये से भी कम है। ये सरकारी रिपोर्ट है। खेतीबाड़ी में लगे 90 प्रतिशत मज़दूरों के पास कोई जमीन नहीं है अगर है तो वो भी एक एकड़ से भी कम।

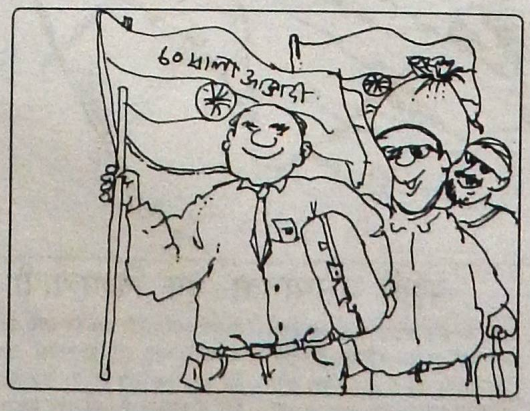

भारत में नीचे के 35 प्रतिशत लोग तो भयंकर कुपोषण का शिकार हैं। स्वस्थ जीवन जीने के लिए इंसान को रोजाना 2400 कैलोरी ऊर्जा की जरूरत रहती है। नीचे की ये 35 प्रतिशत जनता 1626 कैलोरी ऊर्जा पर ही जीवन बसर करने पर मजबूर है। भूख तत्काल नहीं मारती। ये धीरे-धीरे मौत देती है। लम्बे समय तक कम भोजन शरीर की बीमारियों से लड़ने की शक्ति को घटा देता है, स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता रहता है। बीच के 45 प्रतिशत लोगों की हालात भी कोई बहुत अच्छी नहीं। वो भी औसतन 2000 कैलोरी ऊर्जा पर ही गुजारा कर रहे हैं। ऊपर के 20 प्रतिशत के पास इसकी कोई कमी नहीं।

यूँ तो भारत का इसके अरबपतियों की बढ़ती जा रही गिनती से काफी नाम रोशन हुआ है दुनिया भर में। लेकिन यह वही देश है जहाँ प्रजनन के वक्त होती औरतों की मौतों की गिनती में दुनिया के हर दूसरे देश को पीछे छोड़ चुका है। इन मौतों का मुख्य कारण कुपोषण ही है। माताओं के शिक्षा, राजनीतिक, आर्थिक और स्वास्थ्य स्तर के हिसाब से बनाई गई 66 देशों की सूची "मदरज इंडैक्स रैंक-2007" में भारत का 61वाँ स्थान है।

बच्चों की हालत के मामले में भी भारत की हालत लगभग ऐसी ही है। दुनिया भर में हर वर्ष 10 लाख बच्चों की मृत्यु होती है। भारत इसमें 1 लाख 90 हजार बच्चों की मौतें दर्ज करवाता है।

जब कोई एक अरबपति बनता है तो इसका अर्थ होता है कि वो करोड़ों को सड़कपति बना चुका है। यही कारण है कि एक तरफ तो अमीरों की गिनती में अगर भारत का स्थान आगे गया है तो दूसरी ओर ग़रीब मेहनतक़श जनता की जीवन परिस्थितियाँ और भी असहनीय हो गई हैं।

लखविन्दर

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ, सुखविन्दर • सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ